लक्ष्मीनारायण लाल

मन्नू

इस नाटक के अभिनय, प्रदर्शन, किसी भी तरह के प्रस्तुतीकरण, प्रसारण आदि किसी भी प्रकार के उपयोग के लिए इसके लेखक लक्ष्मीनारायण लाल की लिखित पूर्व-अनुमति अनिवार्य है।

पता :

54 A. M. I. G. Flats,
A-2, Paschim Vihar,
New Delhi-110063

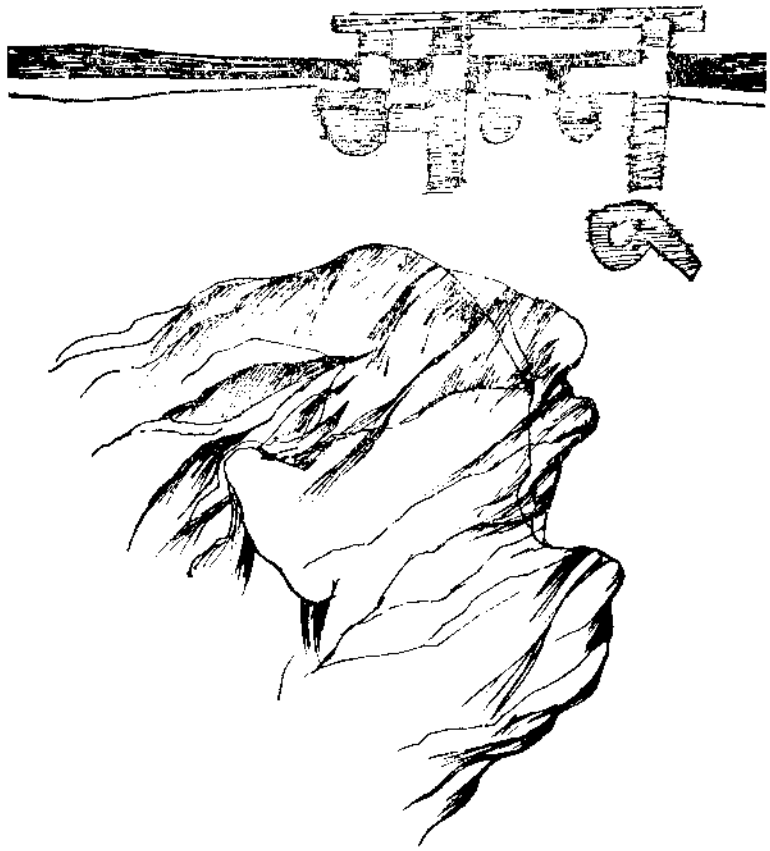

पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी

शैक्षिक प्रकाशक
८८८, ईस्ट पार्क रोड, करौल बाग़,
नई दिल्ली-११०००५. (भारत)

लक्ष्मीनारायण लाल

हमारे यहाँ से उपलब्ध डा० लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा रचित अन्य साहित्य

उपन्यास

- काले फूल का पौधा
- रूपाजीवा
- बड़ी चम्पा छोटी चम्पा

नाटक

- गंगामाटी
- अंधा कुआँ
- दर्पन
- राम की लड़ाई

बाल साहित्य

- स्वतन्त्रता से सम्पूर्ण क्रान्ति की ओर
- ग़रीब परी तथा अन्य कहानियाँ

मूल्य : बारह रुपये केवल □ प्रथम संस्करण : जुलाई १९८४
कापीराईट : © डा० लक्ष्मीनारायण लाल □ प्रकाशक : पीताम्
पब्लिशिंग कम्पनी, ८८८, ईस्ट पार्क रोड, करौल बाग, नई दिल्ल
११०००५. (भारत), दूरभाष : (कार्यालय) ५२६९३३, ७७००९
७७६०५८ (आवास) ५६२९१९, ५६१३२१, ५७१५१८२ □ मुद्र
मित्तल प्रिण्टर्स, के-१३, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

MANNU : Drama : Lakshmi Narain Lal Rs. 1

प्रस्तावना

आजकल आधुनिक रंगमंच के नाम से जो कुछ भारतवर्ष में है, मैं निःसंकोच लिखकर कह रहा हूँ, कि यह सब कुछ पश्चिम की बैसाखियों पर खड़ा है। पूरा पश्चिम पर भी नहीं। पश्चिम की पूरी नकल भी नहीं। इस प्रसंग में नाटककार के रूप में केवल रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाटकों को भारतीय कहा जा सकता है।

यह निर्विवादतः सत्य है, कि जो आधुनिक है, वह स्वभावतः पश्चिम का है। रंगमंच के अपने सन्दर्भों में जो भारतीय है, अर्थात् जो हमारी परम्परा है, उसकी वैज्ञानिक खोज, जाँच-पड़ताल, अनुसन्धान किये बिना हमें कुछ भी हासिल नहीं हो सकता।

अपनी-अपनी रंग परम्परा का यह वैज्ञानिक अनुसन्धान रूस में स्टेन्सलाव्स्की ने किया है, जर्मनी में ब्रेख्त ने, पोलैण्ड में ग्रोटोवस्की ने। पीटर ब्रुक ग्रोटोवस्की से प्रेरणा लेकर यही अनुसन्धान कर रहा है। यह अनुसन्धान इंग्लैण्ड में नहीं हो रहा है। यह अनुसन्धान भारतवर्ष में भी नहीं हुआ।

भारतवर्ष आधुनिक इंग्लैण्ड का उपनिवेश रहा है। वर्तमान भारतवर्ष अपनी आज़ादी के बावजूद उसी इंग्लैण्ड का सांस्कृतिक उपनिवेश बन कर आज किसी तरह सांसें ले रहा है। सांसें इसलिए, कि 1835 से लेकर आज तक जिस गुलामी और शोषण में भारतवर्ष रहा है, उसमें अब इतनी भी शक्ति शेष नहीं रही है कि वह नकल तक कर सके। नकल करने के लिए भी अकल चाहिए, यह हमारे यहाँ का लोक मुहावरा है।

भारतवर्ष का गत दो हज़ार वर्षों का जो जीवन इतिहास रहा है, उसके ढेर और मलबे के नीचे भारतवर्ष का अपना रंगमंच ढूँढ़ना, तलाशना और वैज्ञानिक अनुसन्धान करना, इतना सरल काम नहीं है। नाट्य-रंग, नाट्य-मण्डप, अभिनेता, अभिनय, दर्शक, सूत्रधार, लोक, शास्त्र, ध्रुवा, वेश, अधिष्ठान, अवस्था, रूपक, आदि असंख्य भाव, बिन्दु, रूढ़ियाँ, स्वरूप,

धर्मिता, वृत्तियाँ, परम्पराएँ क्या-क्या रही हैं ; एक ओर इनके अनुसन्धान, दूसरी ओर इन्हें अपने वर्तमान रंग क्रियाकलाप से युक्त (योग) किये बिना कहीं कुछ भी 'अपना' सम्भव नहीं है।

रंगमंच किसी भी देश और काल का क्यों न हो, वह एक परम्परा है, जीवित धारा है। उसके अर्थ, उसकी प्रकृति, उसके इष्ट, धर्म को वैज्ञानिक रूप से, समूल रूप से देखना और जानना अनिवार्य है।

आधुनिकता की भारतवर्ष पर जो भयंकर मार पड़ी है, उसका यही रहस्य सूत्र है कि विकास का मापदण्ड केवल पश्चिम है। पश्चिम मायने आधुनिक ; आधुनिक मायने जो अपनी जड़ से सर्वथा मूलहीन होकर उनके मापदण्ड के अनुसार चले। इससे दो महत्वपूर्ण परिणाम और प्रभाव हम पर पड़े। हम इस परिणाम और प्रभाव को ही देखने, जानने में असमर्थ रहे। दूसरे, हमारा आत्मविश्वास स्वभावतः इस कदर खण्डित हुआ कि हम मानने को मजबूर हो गए कि जो प्राचीन और पारम्परिक है, वह पिछड़ी और मरी हुई चीज है। उससे हमारे वर्तमान का अधिक से अधिक इतना ही सम्बन्ध शेष है कि हम कभी-कभार उसका श्राद्ध और कर्मकाण्ड करके, पुरखों के नाम पर कुत्तों और कौओं को कुछ खिला दें। हमने अपनी पूरी परम्परा को, इसके फलस्वरूप, विचार और क्रिया, दोनों से काट दिया।

उपनिवेशवाद का एक अजब दिलचस्प असर हम पर यह रहा कि जो हमारी दुनिया थी, उसे कल्पित, 'धार्मिक' दुनिया साबित कर दिया गया। अंग्रेजों का जो हम पर राज आया, वही असल, वही वास्तविक दुनिया है, यह हमें हृदयंगम कराया गया। यह सिद्ध किया गया कि भारत की दुर्बलता और दरिद्रता उसके ऐतिहासिक पिछड़ेपन के कारण है। जिन मूल्यों, व्यवस्थाओं को भारतीय समाज सनातन मानकर सदियों से जीता रहा है, उसे एक अविकसित अवस्था का सबूत मानना पश्चिम की अपनी महत्ता प्रमाणित करने के लिए आवश्यक था। साम्राज्यवादी युग में पश्चिम-निवासी अपनी सभ्यता के प्रचार-प्रसार को अपनी जिम्मेदारी मानते थे। अब उसी उपनिवेशवादी दिमाग़ के परिणामस्वरूप स्वतंत्र (?) भारत अपने आपको पिछड़ा देश मान कर पाश्चात्य सभ्यता, रीति-नीति को सहर्ष अपना रहा है, ताकि पश्चिम की पूँजी, विज्ञान, कला की सहायता से अपना विकास कर सके।

इसका नतीजा यह हुआ कि संस्कृति की एक अभूतपूर्व अवधारणा यहाँ प्रचारित होनी शुरू हुई।

धर्म के स्थान पर संस्कृति।

प्राचीन भारतीय सभ्यता के अनुसार मनुष्य एक धर्म के सहारे जीता है जो अविभक्त और शाश्वत है। आधुनिक मान्यता धर्म को नहीं मानती। उसका स्थान संस्कृति को देती है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्राचीन भारतीय सनातन परम्परा का महत्व मात्र ऐतिहासिक है। उसमें 'रंग' मूल्य, स्वर, भाव की खोज ही व्यर्थ है। यह पश्चिमी-आधुनिक धारणा हमारी धर्मप्रधान पुरुषार्थ व्यवस्था को मात्र अर्थ-काम व्यवस्था बना देती है।

हमारी धारणा में प्रकृति के प्रति शत्रुता, शोषण का भाव नहीं है। हमारे नाट्य में तभी प्रकृति मनुष्य का अभिन्न अंग है। पश्चिम के 'ड्रामा' में प्रकृति के प्रति बिल्कुल विपरीत विचार है। वहाँ ड्रामा रूपी दर्पण में प्रकृति के चेहरे के प्रति क्रूर मज़ाक (ट्रैजेडी) का भाव है।

हमारे भाव के अनुसार मनुष्य की बौद्धिक प्रकृति में एक दिव्य बीज अन्तर्निहित है, जिसकी अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के संस्कार की आवश्यकता है। दिव्य शक्ति की ओर उन्मुख भाव से चलना, कर्म करना ही सम्यक् कृति है। हमारे नाट्य में एक ओर अभिनय से जिसका संकेत मिलता है, दूसरी ओर नाट्य के मूल सूत्र से—*अवस्था अनुकृति नाट्यम्।*

कृति की संस्कृति है जो कालक्रम से प्रकृति-गर्भ से देवत्व के अवतार का हेतु बनती है। दिव्यत्व का प्रकाशन ही मनुष्य का धर्म है। यही भाव प्रकाशन अभिनय का आधार है।

पर आज क्या स्थिति है? रंगमंच का दो विरोधी हिस्सों में बँटवारा कर दिया गया है। भारतवर्ष का जो प्राचीन है वह वर्तमान का विरोधी है और जो वर्तमान है उसका अपने प्राचीन उत्स, अपनी परम्परा से कोई सम्बन्ध नहीं है। एक कल्पित धार्मिक दुनिया और एक वास्तविक दुनिया—भारत के चित्त के इस विभाजन को देखना और जानना कितना कठिन और कितना महत्वपूर्ण है।

मेरा अनुभव हुआ कि रंगमंच अपने को, सबको देखने का एक विराट मंच है।

हमारा नाट्य, 'अवस्था की अनुकृति' है। पर यह अवस्था क्या है? यह अनुकृति क्या है? इन शब्दों के अर्थों का जब वैज्ञानिक अनुसन्धान किया तो आश्चर्यचकित रह गया। अवस्था का अर्थ है—अधिष्ठान। अधिष्ठान का अर्थ है—आधार। हर अवस्था 'रूप' से अवस्थित रहती है इसीलिए अवस्था है। अवस्था का अधिष्ठान उसका रूपकत्व है। यह मैं नहीं, हमारा शास्त्र कह रहा है।

हमारी परम्परा यह कहती है कि 'वेश' (आहार्य) उसे कहते हैं, जो चित्तवृत्ति को व्याप्त करता है और अपनी प्रतीति द्वारा रस-रूप में संक्रान्त होता है। जैसे—"यह सांख्य का पुरुष कुछ नहीं करता," "उसने मेरे लिए इस पूर्वरंग की निर्मिति कर डाली", "तथा इन दोनों में महत्ता इसकी अधिक है" आदि वाक्यों में प्रयुक्त पुरुष, पूर्वरंग, महत्ता शब्द क्रमशः सांख्य, नाट्यशास्त्र तथा वैशेषिक दर्शन के विशेष शब्द हैं। इन शब्दों के शास्त्रीय और लौकिक प्रयोग एक-दूसरे को काटते नहीं, बल्कि एक-दूसरे को विस्तार देते हैं।

पर आज हो रहा है इसके ठीक विपरीत। आज आधुनिक खड़ा है प्राचीन के विरोध में, उसी तरह शास्त्र खड़ा है लोक के विरोध में, लोक खड़ा है शास्त्र के विरोध में। परस्पर विरोध का यही विस्तार हमारे वर्तमान रंगमंच के विविध क्षेत्रों, अंगों और पक्षों में विद्यमान है। निर्देशक नाटककार के विरोध में, नाटककार निर्देशक व अभिनेता के विरोध में, अभिनेता निर्देशक के विरोध में खड़ा है। ऐसी स्थिति में रंगमंच के विचार और प्रयोग दोनों पक्ष भयंकर संकट में हैं।

रंगमंच पलायन नहीं है, कहीं कोई भागना नहीं है। यह जीवन का अभिनय है। व्यक्ति के समाज का, समाज से सम्बन्धों की प्रतीति का यह एक 'महाभाव' है। इससे कम नहीं, इससे ज्यादा नहीं।

रंगमंच से जुड़े हुए प्रत्येक अंग को गायक, नर्तक, कवि की तरह प्रत्येक दिन अपने आप से यह प्रश्न करना होगा कि "मैं क्या हूँ?" "मैं यह कैसे कर रहा हूँ?"

पिछले कुछ वर्षों में मुझे शान्ति निकेतन, दिल्ली, कोल्हापुर, महर्षि दयानन्द (रोहतक), पूना, आगरा आदि विश्वविद्यालयों में नाटक और रंगमंच पर कुछ व्याख्यान देने का सौभाग्य मिला। उसके बाद दिल्ली की नाट्य संस्था 'संवाद' में रंगमंच के विषय में विधिवत् कुछ बातें कहनी चाहीं। पर इन सभी जगहों पर मैंने बहुत गहराई से यह अनुभव किया कि शब्द और अर्थ में भयंकर व्यवधान है। जो हम कहना चाहते हैं उसे हम अपने पाठकों, दर्शकों और श्रोताओं को बता नहीं पाते, अर्थात् उन तक पहुँचा नहीं पाते। सचमुच हम दो दुनिया में विभाजित कर दिये गये हैं—जहाँ प्रयोग है, क्रिया है, वहाँ विचार नहीं है। जहाँ विचार है वहाँ प्रयोग और प्रस्तुतीकरण नहीं है। इसी प्रसंग और प्रकाश में 'मन्नू' नाटक को देखना चाहिए।

१ मई, १९८४ —लक्ष्मीनारायण लाल

अनुक्रमणिका

आधुनिक हिन्दी नाटक : १३ से २७
'मन्नू' नाटक के बारे में : २९ से ३४
नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल
और उनकी कृतियों का परिचय : ३५ से ३७
मन्नू : १ से ७६

पहला अंक : ३
पहला दृश्य : ५ से ४५
दूसरा अंक : ४७
दूसरा दृश्य : ४९ से ७६

आधुनिक हिन्दी नाटक

[डा० लक्ष्मीनारायण लाल]

जब हम नाटक अथवा रंगमंच को आधुनिक विशेषण से जोड़ते हैं तब हम उस तथ्य को रेखांकित करना चाहते हैं जो श्रेष्ठ नाटक और रंगमंच की आत्मा में सदैव विद्यमान रहा है—वह सत्य है अपने युग के यथार्थ से साक्षात्कार का। यह साक्षात्कार हर युग-काल में जिस संदर्भ और जितने आयाम से कोई नाटककार अपने परिवेश के साथ करता है उतने ही अर्थ में उस देश, काल और भाषा का नाटक और रंगमंच आधुनिक होता है।

भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी नाटक तथा रंगमंच के पहले कृतिकार थे। इनके काल में जो परिवेश इन्हें प्राप्त था वह था सामाजिक मान्यताओं के स्तर पर नए-पुराने संघर्ष का, ब्रिटिश राज्य अथवा अंग्रेजी संस्कृति बनाम हिन्दू सभ्यता और संस्कृति का। इन दोनों परिस्थितियों के बीच भारतेन्दु को अपना नाटककार व्यक्तित्व प्राप्त करना था। प्रकट है कि भारतेन्दु के ऊपर एक ओर संस्कृत नाट्य परम्परा का प्रभाव है तो दूसरी ओर ऐतिहासिक रोमांस का, तो तीसरी ओर रासलीला का, चौथी ओर नारी समस्या भी एक नए प्रसंग में विकसित होती है। अध्ययन करने पर भारतेन्दु का समूचा नाट्य साहित्य इन विभिन्न धाराओं का मनोरंजक समूह-सा लगता है।

इन नाटकों का प्रधान पक्ष शिल्प है कथ्य नहीं। कथ्य के स्तर पर इनके दो नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र' और दूसरा 'अन्धेर नगरी' ऐसे अवश्य हैं जिनका अध्ययन आधुनिकता के संदर्भ में कर सकते हैं। 'सत्य हरिश्चन्द्र'

अपने शिल्प में संस्कृत नाटक का शिल्प है, किन्तु अपने काव्य में यह नाटक हरिश्चन्द्र के चरित्र की उस करुणा को व्यक्त करता है जहाँ सत्य के पालन में मनुष्य को बाजार में दयनीय स्थिति में बिकना पड़ता है और मानवता के श्मशान पर अपने पुत्र के शव के सामने अपनी ही पत्नी से कफ़न के लिए कहना पड़ता है। यह १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के मनुष्य के संघर्ष की एक झांकी है जो यथार्थ भी है और करुण भी ! दूसरी ओर 'अन्धेर नगरी' में अपने समय के परिवेश पर गहरा और व्यंगात्मक प्रहार किया गया है।

भारतेन्दु के बाद प्रसाद ने नाटक भूमिका को एक साहित्यिक स्तर दे दिया और उसे 'आत्मानुभूति' से जोड़ दिया। इस तरह प्रसाद के द्वारा नाटक के क्षेत्र में बाहरी समाजालोचना व समाज-सुधार—इन सबसे बहुत गहरे मानवीय संघर्ष और उनके व्यक्तित्व की सार्थकता के प्रश्नों को जोड़ देने का कार्य किया गया। 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी,'—ये तीनों नाटक मनुष्य के महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। इन स्तरों पर ये नाटक अपने अर्थ में आधुनिक हैं। इनका ऐतिहासिक परिवेश निश्चय ही तत्कालीन समस्याओं से उद्भूत है और वे तीनों नाटक ऐतिहासिक होते हुए भी सम-सामयिक हैं—इनके सारे चरित्रों के माध्यम से हम १९२९ से १९३६ तक के भारतवर्ष का सम्पूर्ण स्वरूप देखते हैं।

दूसरी ओर चन्द्रगुप्त के भीतर जो चारित्रिक संघर्ष है और जो उसमें द्वैत है उन दोनों से वह लड़ता-जूझता हुआ अपने-आपको नाटक के अन्त में पाता है, उतने अर्थ में वस्तुतः 'स्कन्दगुप्त' एक आधुनिक नाटक सिद्ध होता है। रंगमंच के स्वरूप में भी प्रसाद के नाटक सम्भावनाओं और रंग-शक्तियों से बहुत ही परिपूर्ण हैं। इन नाटकों का दोष केवल यह है कि ये अपने विस्तार में एक संवेदना से अधिक बाहरी तथ्यों को भी अपने में समेटे रहते हैं, किन्तु ये सारी समस्यायें बहुत गौण रूप में नाटक से जुड़ी हैं और इनका मूल संवेदना से कोई महत्त्वपूर्ण योग नहीं है।

यह सच है कि हिन्दी क्षेत्र में लोक रंगमंच की परम्परा अबाध रूप से विद्यमान थी। रामलीला, कृष्णलीला, स्वांग, भगत, नौटंकी आदि सब थे। पर इनका सम्बन्ध उस बदले हुए समय, युगबोध से कतई नहीं था, जैसे कि बंगाल में उनके परम्परागत लोकनाट्य 'यात्रा' में हुआ और उसमें से आगे

पैदा हुई एक नाट्य परम्परा।

हिन्दी में उस नयी नाट्य-परम्परा की एक सार्थक तलाश भारतेन्दु का 'अन्धेर नगरी' नाटक है और यह एक तलाश भारतेन्दु ने कितनी लम्बी यात्रा तय करके की है। 'अन्धेर नगरी' कितनी ही परम्पराओं को अपने में पचाकर अपने समय में उत्पन्न सामाजिक जीवन का एक यथार्थ रूपक है जिसकी भाषा, रूपबंध और समूचा रंगमंच हिन्दी की अपनी मौलिक कृति है। पर इसके बाद यह परम्परा वहीं-की-वहीं रुक गई, और ठीक इसके विपरीत पारसी थिएटर विकसित होता रहा। विकसित इस अर्थ में कि यह समय के अनुसार राष्ट्रीय चेतना, धर्म और समाज के पुनरुत्थान की चेतना को अपना विषय बनाने लगा। इसलिए नहीं कि उसे इन विषयों में किसी प्रकार की स्वयं आस्था थी, बल्कि इसलिए कि उस काल का दर्शक-वर्ग वही विषय चाहता था और इसी भावना में वह रंगा था।

पर यह विषय भावना उतनी ही थी जितनी कि उस समय की अंग्रेज़ी हुकूमत की नज़र में कहीं खटके नहीं। प्रथम महायुद्ध के बाद से तीसरे दशक के अन्त तक, यह इतना काल पारसी थिएटर की चरम सफलता का काल है और हिन्दी भाषा क्षेत्र के लिए यह काल 'स्वदेशी आन्दोलन', 'असहयोग आन्दोलन', 'क्रान्तिकारी संघर्ष' का समय है। इसके जवाब में अंग्रेज़ी हुकूमत की ओर से क्रमशः 'रौलेट एक्ट', 'जलियाँवाला हत्याकांड', 'कम्युनल एवार्ड' और 'दमन' के अन्य क्रूर चक्र काल हैं।

ऐसी परिस्थिति में पारसी थिएटर को दोधारी तलवार पर चलना पड़ा। इन दोनों परस्पर विरोधी स्थितियों का हल पारसी थिएटर ने ढूँढ़ निकाला कि राष्ट्रीय चेतना, पुनरुत्थान की भावना पर इश्क, मेलोड्रामा, रोमानियत का चटक रंग चढ़ा दिया जाए। इसके बाद भी यदि कहीं राष्ट्रीय चेतना, भारत का गौरव, स्वदेश भावना, हिन्दुत्व दिखे, तो उसे अजीबो-गरीब सीन-सीनरियों, चमत्कारपूर्ण रंगमंचीय करिश्मों में इस तरह ढाँप दिया जाए कि दर्शक उसी बाह्य से चमत्कृत रह जाए और इसके ऊपर गाने, रक्स, वगैरह की चाशनी में सब कुछ अजीब ढंग से मीठा-मीठा कर दिया जाये।

इस प्रसंग में यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है कि जैसे-जैसे राष्ट्रीय

चेतना हिन्दी भाषा और इसकी संस्कृति से जुड़ती गयी है, वैसे-वैसे पारसी कम्पनियों ने धर्मकथावाचकों (राधेश्याम), हिन्दी धर्म, पुराण और इतिहास को उसी निष्ठा से देखने वाले नारायण प्रसाद 'बेताब' को महत्व देना शुरू किया। शुद्ध हिन्दी भाषा और हिन्दी छंद, गीत और इतिहास, पुराण की सीधी कथा। राष्ट्रीय भावधारा, हिन्दुत्वगरिमा, वतन की आवरू पर कुर्बान हो जाना। इसके कितने सारे उद्धरण पारसी नाटक में से दे दिए जा सकते हैं।

पर ये सारी भावनायें, उद्‌गार, उपदेश भाषण के रूप में आये। तिस पर भी इसे क्रमशः संतुलित किया (ढके रखा) मुहब्बत की दीवानगी ने, राजा बहादुर और खटपटसिंह की विदूषकी ने, सौभागचन्द, हरीदास मारवाड़ी चरित्रों, मिरासी, तबलची, तमाशबीनों के हास्य ने तथा चेता चमार, सती गोपी के अति विषयांतर प्रसंगों ने।

बिलकुल ठीक इसी के समांतर इसी काल में जयशंकर प्रसाद अपने पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों में इसी पुनरुत्थान की भावना और राष्ट्रीय गौरव को किशोर मन की भावुकता और छायावादी कुहेलिका से ढक कर, उस पर अस्पष्टता का झीना-सा आवरण चढ़ाकर अभिव्यक्त कर रहे थे। यह अत्यन्त उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु ने ऐसा कहीं नहीं किया है। इसका कारण था कि प्रसाद के विपरीत भारतेन्दु प्रत्यक्ष रंगमंच से जुड़े थे और स्वतन्त्र नाट्य-परम्परा के लिए संघर्षरत थे।

प्रसाद ने ठीक इसके विपरीत किया। उन्होंने नाटक का रूपबन्ध और रंगमंच का पूरा विधान सीधे पारसी थियेटर से ज्यों-का-त्यों ले लिया और पारसी थियेटर के विपरीत (प्रतिक्रिया स्वरूप) उन्होंने उसमें काव्यात्मकता, साहित्यिकता भर दी। उन्होंने तीन अंकों, अर्थात् चरमसीमा से आगे 'फलागम' (संस्कृत) और समाहार (डिनाउन्समेन्ट'—शैक्सपियर) तक सोचा, और उसी के अनुरूप कथा, चरित्र और अंकदृश्य योजना बनायी। और, तभी निर्देशक, अभिनेता और दर्शक की कल्पना, सृजन शक्ति को जगाता हुआ कई स्तरों पर अपने-आपको निर्मित और सम्पूर्ण करता है।

पारसी थिएटर का सारा रंगविधान प्रसाद के नाट्य विषय और भावबोध से बिलकुल विपरीत पड़ने के कारण, नाटककार प्रसाद की शक्ति को

खंडित नहीं करता, उसे बिखेर देता है। पारसी थिएटर जैसे 'इश्क' और राष्ट्रीयता के दो विरोधी घोड़ों पर चढ़ा था, ठीक उसी तरह प्रसाद की समूची नाट्यकला पारसी थिएटर और 'आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति' के परस्पर विरोधी अश्वों पर आसीन थी। जहाँ सारा दृश्यत्व रंगे हुए पर्दों सीन-सीनरियों और अभिनय से लेकर यांत्रिक प्रभावों तक सीमित है, वहाँ काव्य के लिए कल्पना और गहराई की कोई गुंजाइश नहीं हो सकती। वहाँ काव्य केवल संवाद में हो सकता है या गीतों में। वही प्रसाद के नाटकों में हुआ भी।

इतना ही नहीं प्रसाद के काव्यस्तर पर वही कथित, सूचित, परिभाषित राष्ट्रीयता, नवोत्थान, समाज-सुधार का अतिस्वर छाया रहा।

दो परस्पर विरोधी रंग प्रवृत्तियों के प्रयोग के कारण, तथा नाटक में पाठ्य आग्रह के कारण विषय, कथा, चरित्र और अंकविधान के स्तर पर अनेक सीमायें और सामने आती हैं।

एक ओर प्रसाद ऐतिहासिक नाटक लिखने के पीछे प्राचीन भारत के मौलिक इतिहास के अन्वेषक होना चाहते थे, दूसरी ओर जैसे 'बेताब' और राधेश्याम ने क्रमशः 'महाभारत' और 'वीर अभिमन्यु' में समूचे महाभारत का सार और पूरी अभिमन्यु गाथा कह डालना चाहा है—ठीक इसी तरह प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कन्दगुप्त' में ऐतिहासिक कथाओं से दोनों कालों की समूची तत्कालीन सांस्कृतिक परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया और इन्हें नाटक भी बनाना चाहा है। इसका फल यह हुआ कि इन दोनों नाटकों में 'वस्तुकाल' बहुत ही लम्बा हुआ है। ठीक वैसे जैसे 'बेताब' के 'महाभारत' में। इस लम्बे काल से किस प्रकार नाटक को हानि पहुँचती है, यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग आरम्भ में किशोर या युवा थे, उन्हें स्वभावतः अन्ततः प्रौढ़ या वृद्ध हो जाना चाहिए; पर नाटककार उन्हें वहीं रखता जाता है, और पच्चीस वर्ष बाद भी वे युवा ही रहते हैं। इतिहास और नाटक दोनों स्तरों पर ऐसी अनेक सीमायें और दोष सामने आते हैं।

पारसी थिएटर में दर्शक को लुभाने तथा पूरी कथा बताने के लिए एक से एक चमत्कारमूलक दृश्यों की अवतारणा की जाती थी। 'चन्द्रगुप्त' में भी

चेतना हिन्दी भाषा और इसकी संस्कृति से जुड़ती गयी है, वैसे-वैसे पारसी कम्पनियों ने धर्मकथावाचकों (राधेश्याम), हिन्दी धर्म, पुराण और इतिहास को उसी निष्ठा से देखने वाले नारायण प्रसाद 'बेताब' को महत्व देना शुरू किया। शुद्ध हिन्दी भाषा और हिन्दी छंद, गीत और इतिहास, पुराण की सीधी कथा। राष्ट्रीय भावधारा, हिन्दुत्वगरिमा, वतन की आबरू पर कुर्बान हो जाना। इसके कितने सारे उद्धरण पारसी नाटक में से दे दिए जा सकते हैं।

पर ये सारी भावनायें, उद्‌गार, उपदेश भाषण के रूप में आये। तिस पर भी इसे क्रमशः संतुलित किया (ढके रखा) मुहब्बत की दीवानगी ने, राजा बहादुर और खटपटसिंह की विदूषकी ने, सौभागचन्द, हरीदास मारवाड़ी चरित्रों, मिरासी, तबलची, तमाशबीनों के हास्य ने तथा चेता चमार, सती गोपी के अति विषयांतर प्रसंगों ने।

बिलकुल ठीक इसी के समांतर इसी काल में जयशंकर प्रसाद अपने पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों में इसी पुनरुत्थान की भावना और राष्ट्रीय गौरव को किशोर मन की भावुकता और छायावादी कुहेलिका से ढक कर, उस पर अस्पष्टता का झीना-सा आवरण चढ़ाकर अभिव्यक्त कर रहे थे। यह अत्यन्त उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु ने ऐसा कहीं नहीं किया है। इसका कारण था कि प्रसाद के विपरीत भारतेन्दु प्रत्यक्ष रंगमंच से जुड़े थे और स्वतन्त्र नाट्य-परम्परा के लिए संघर्षरत थे।

प्रसाद ने ठीक इसके विपरीत किया। उन्होंने नाटक का रूपबन्ध और रंगमंच का पूरा विधान सीधे पारसी थियेटर से ज्यों-का-त्यों ले लिया और पारसी थियेटर के विपरीत (प्रतिक्रिया स्वरूप) उन्होंने उसमें काव्यात्मकता, साहित्यिकता भर दी। उन्होंने तीन अंकों, अर्थात् चरमसीमा से आगे 'फलागम' (संस्कृत) और समाहार (डिनाउन्समेन्ट'—शैक्सपियर) तक सोचा, और उसी के अनुरूप कथा, चरित्र और अंकदृश्य योजना बनायी। और, तभी निर्देशक, अभिनेता और दर्शक की कल्पना, सृजन शक्ति को जगाता हुआ कई स्तरों पर अपने-आपको निर्मित और सम्पूर्ण करता है।

पारसी थिएटर का सारा रंगविधान प्रसाद के नाट्य विषय और भावबोध से बिलकुल विपरीत पड़ने के कारण, नाटककार प्रसाद की शक्ति को

खंडित नहीं करता, उसे बिखेर देता है। पारसी थिएटर जैसे 'इश्क' और राष्ट्रीयता के दो विरोधी घोड़ों पर चढ़ा था, ठीक उसी तरह प्रसाद की समूची नाट्यकला पारसी थिएटर और 'आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति' के परस्पर विरोधी अश्वों पर आसीन थी। जहाँ सारा दृश्यत्व रंगे हुए पर्दों सीन-सीनरियों और अभिनय से लेकर यांत्रिक प्रभावों तक सीमित है, वहाँ काव्य के लिए कल्पना और गहराई की कोई गुंजाइश नहीं हो सकती। वहाँ काव्य केवल संवाद में हो सकता है या गीतों में। वही प्रसाद के नाटकों में हुआ भी।

इतना ही नहीं प्रसाद के काव्यस्तर पर वही कथित, सूचित, परिभाषित राष्ट्रीयता, नवोत्थान, समाज-सुधार का अतिस्वर छाया रहा।

दो परस्पर विरोधी रंग प्रवृत्तियों के प्रयोग के कारण, तथा नाटक में पाठ्य आग्रह के कारण विषय, कथा, चरित्र और अंकविधान के स्तर पर अनेक सीमायें और सामने आती हैं।

एक ओर प्रसाद ऐतिहासिक नाटक लिखने के पीछे प्राचीन भारत के मौलिक इतिहास के अन्वेषक होना चाहते थे, दूसरी ओर जैसे 'बेताब' और राधेश्याम ने क्रमशः 'महाभारत' और 'वीर अभिमन्यु' में समूचे महाभारत का सार और पूरी अभिमन्यु गाथा कह डालना चाहा है—ठीक इसी तरह प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कन्दगुप्त' में ऐतिहासिक कथाओं से दोनों कालों की समूची तत्कालीन सांस्कृतिक परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया और इन्हें नाटक भी बनाना चाहा है। इसका फल यह हुआ कि इन दोनों नाटकों में 'वस्तुकाल' बहुत ही लम्बा हुआ है। ठीक वैसे जैसे 'बेताब' के 'महाभारत' में। इस लम्बे काल से किस प्रकार नाटक को हानि पहुँचती है, यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग आरम्भ में किशोर या युवा थे, उन्हें स्वभावतः अन्ततः प्रौढ़ या वृद्ध हो जाना चाहिए; पर नाटककार उन्हें वहीं रखता जाता है, और पच्चीस वर्ष बाद भी वे युवा ही रहते हैं। इतिहास और नाटक दोनों स्तरों पर ऐसी अनेक सीमायें और दोष सामने आते हैं।

पारसी थिएटर में दर्शक को लुभाने तथा पूरी कथा बताने के लिए एक से एक चमत्कारमूलक दृश्यों की अवतारणा की जाती थी। 'चन्द्रगुप्त' में भी

ऐसे चमत्कारमूलक दृश्यों के मोह से इसे रचनागत अराजकता से भर दिया है। ये नाटक को अनावश्यक रूप से अतिरंजनाप्रधान बनाते हैं, और इसके काव्यतत्व को स्वभावतः तोड़ते हैं।

अंकों की शुरूआत 'रुस्तम सोहराब' के विधान की याद दिलाती है, पर इनके अन्त झाँकी (टैब्लो) विधान के अनुरूप होते हैं और 'बेताब', राधेश्याम का प्रभाव सामने आता है। दृश्य, प्रवेश, प्रस्थान, काव्यव्यापार — इन सब पर 'हश्र', 'बेताब', डी० एल० राय, राधेश्याम के परस्पर विरोधी प्रभाव उल्लेखनीय हैं। अन्ततः प्रसाद की कोई रंगशैली तभी स्पष्ट उभरकर नहीं आती।

लगता है प्रसाद से अपनी इस रंगमंच सीमा को 'ध्रुवस्वामिनी' तक पहुँचते-पहुँचते स्वीकार किया है और 'ध्रुवस्वामिनी' में वे यथार्थवादी रंग-मंच-शैली की ओर झुके हैं। इससे पहले के किसी भी नाटक में उन्होंने दृश्य सज्जा या मंच दृश्य का इतना विधिवत् विधान नहीं दिया है। केवल 'स्कन्धावार', 'राजप्रासाद', 'प्रकोष्ठ', 'श्मशान', 'युद्धस्थल' आदि एक शब्द से वे पूरे दृश्य का संकेत कर देते थे; पर यहाँ 'ध्रुवस्वामिनी' में उन्होंने बाकायदा दृश्यों का विधिवत् नाटकीय हेतु चयन किया है।

इन सब सीमाओं के बावजूद प्रसाद के नाटक की कुछ उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं, जिन्हें उनकी रंगमंचगत सीमाओं से बेध कर प्राप्त किया जा सकता है।

काव्यतत्व प्रमुख उपलब्धि हैं, जो नाटक को सही अर्थों में नाटक सिद्ध करते हैं। इसी तत्व से मुख्यतः 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' में एक अजब तरह का सम्मोहन है, जो आज तक बना हुआ है।

उन्होंने इतिहास पुराण को पारसी थिएटर के नाटककारों की तरह न देखकर उसे अपने समय से जोड़ा है और इस तरह उनकी रचना भी की है। अपने समय की समस्त राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक चेतना को उन्होंने अपने ढंग से छुआ है और उनको ऐतिहासिक मानवीय गहराइयों में ले गए हैं।

दृश्यत्व के साथ काव्यत्व को जोड़ने का प्रयत्न इसमें उल्लेखनीय है। इसलिए पारसी थिएटर को सर्वथा भूलकर या काटकर यदि कल्पना की

आँखों से 'स्कन्दगुप्त' को देखा जाए तो एक महत्वपूर्ण नाटक और रंगमंच उससे उभरता है। ऐसा रंगमंच जो हिन्दू सौन्दर्यबोध, स्थापत्य, वस्त्र, रंग-रूप सबकी ओर सार्थक संकेत देता है।

उनके चरित्रों में कई आयाम हैं; जो उन्हें उनके परिवेश से जोड़कर मानवीय और नाटकीय दोनों गुणों से मंडित करते हैं। उनमें गम्भीर संघर्ष छिड़ा है, ये चरित्र से व्यक्तिगत प्राप्ति की ओर बढ़ते सिद्ध होते हैं, और कभी-कभी तो वे सचमुच संगीत की अन्तिम लहरदार तान छेड़कर हमारे मानस में घर कर लेते हैं। 'स्कन्दगुप्त', 'देवसेना' ऐसे ही अप्रतिम चरित्र हैं।

प्रसाद ने 'स्कंदगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' नाटकों में पारसी थिएटर से सर्वथा आगे, पूर्वा पर ध्यान दिया है और नाटक की कथावस्तु, चरित्र को ऐसे नाटकीय बिन्दु से उभारा है जहाँ से वर्तमान और पूर्ववर्ती घटनाओं और क्रियाओं के कलात्मक सम्बन्ध जोड़ते चलते हैं।

प्रसादोत्तर हिन्दी नाट्य और रंगमंच में जो पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और समस्या-प्रधान नाटक हैं वे आधुनिक नाटक के उल्लेखनीय उदाहरण नहीं हैं जितने कि प्रसाद के नाटक थे। क्योंकि प्रसाद में जो गौण था, आनुषंगिक था वही सारे तत्व आगे के नाटकों में नाटक के विषय बन जाते हैं।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान का स्वर लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण 'प्रेमी', सेठ गोविन्ददास में प्रमुख हो जाता है। हरिकृष्ण 'प्रेमी' के 'रक्षाबन्धन' में हिन्दू-मुसलमान की एकता को विषय बनाया गया है। वस्तुतः यह विषय समाज-सुधार का है नाटक का नहीं। इसी तरह मिश्र जी की 'नारद की वीणा', 'गरुड़ ध्वज' हिन्दू संस्कृति और उसकी श्रेष्ठता को व्यक्त करने वाले नाटक हैं। इसी तरह उदयशंकर भट्ट का 'अम्बा' और इस काल के अन्य ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटक आधुनिक नाटक के महत्वपूर्ण आन्तरिक तत्वों से शून्य हैं क्योंकि इनमें प्रत्यक्षतः सांस्कृतिक अध्ययन और तत्व अधिक हैं, मानवीय नियति और उसके यथार्थों का साक्षात्कार बहुत कम है। नाटक मूलतः नाटक होते हैं जो मानव, नियति और उसके संघर्ष के दर्पण होते हैं। नाटक कभी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक नहीं

होते। प्रसादोत्तर इन सारे नाटकों में शिल्प की दृष्टि से भी कोई प्रयोग नहीं हैं, न इन नाटकों में इनका रंगमंच पक्ष ही प्रधान है। बल्कि हम यों कह सकते हैं कि प्रसादोत्तर युग के सारे नाटक अभिनय और रंगमंच परिप्रेक्ष्य में लिखे ही नहीं गये। ये सांस्कृतिक अध्ययन और पठन-पाठन के लिए तथा नाटकेतर उपलब्धियों के लिए अधिक लिखे गये।

जिस प्रकार नाटककार प्रसाद के भीतर भारत के अतीत के प्रति आस्था, कवि का भावुक व्यक्तित्व तथा पारसी थिएटर का रूपबंध और रंगविधान के स्तर पर प्रभाव और विषयवस्तु, भाषा, चरित्र आदि के प्रति गहरी प्रतिक्रिया, प्रमुख शक्तियों के रूप में कार्यरत थी, ठीक उसी प्रकार नाटककार मिश्र के भीतर प्रसाद की काव्यात्मकता के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया, पारसी थिएटर के प्रति तीव्रतर दुराव और इनके स्थान पर इब्सन के नाटकों के रंगविधान की स्वीकृति कार्य कर रही थी। इन्होंने सबसे पहले भावात्मकता के विरुद्ध बुद्धिवाद का स्वर बुलन्द किया।

बुद्धिवाद से स्वभावतः व्यक्तिवाद को जोड़कर मिश्रजी ने व्यक्तिगत नैतिकता, सामाजिक नीतिनिर्वाह के क्षेत्र में बड़े ही निर्भीक और स्वतंत्र ढंग से सोचा। इन दोनों क्षेत्रों में सचाई जो है, जिस रूप में है, उसे तो वह स्वीकार कर लेता है, लेकिन उस पर कितने बेठन चढ़े हैं, उसे कितने कपड़े और गहने पहनाये गये हैं, वह कितनी जंजीरों में बाँधी गई है, इन बातों को वह स्वीकार नहीं करता। 'बुद्धिवाद किसी तरह का हो, किसी कोटि का हो, समाज या साहित्य की हानि नहीं कर सकता।' बुद्धिवाद में 'शूगर-कोटेड' कुनेन की व्यवस्था है ही नहीं। वह तो तीक्ष्ण सत्य है, उसका घाव गहरा तो होता है लेकिन अंगभंग करने के लिए नहीं, मवाद निकालने के लिए, हमारी प्रसुप्त चेतना को जगाकर हमारे भीतर नवीन जीवन और नवीन स्फूर्ति पैदा करने के लिए।

इस बुद्धिवाद और व्यक्तिवाद के भीतर मिश्रजी ने नाटक सम्बन्धी जो मान्यताएँ बनायीं, उन्हें इन बिन्दुओं से देखा-पकड़ा जा सकता है :

- बुद्धि और तर्क के भीतर से ही यथार्थ की अभिव्यक्ति नाटक में हो सकती है, भावना या कल्पना से नहीं।
- यही और ऐसा ही यथार्थवादी नाटक, नाटक कहलाने का अधिकारी है। इन दोनों भावबिन्दुओं को देखने से प्रकट है कि यथार्थवाद की यह प्रेरणा इन्होंने इब्सन से ली।

पर इब्सन के नाट्य का यथार्थवाद वह नहीं है जो मिश्रजी ने ग्रहण किया—वह महज उसके यथार्थ का बाहरी ढाँचा है, जो ऊपर से 'समाज सुधार', 'समाजालोचन' और परम्परा के प्रति 'विद्रोह'-सा दिखाता है। यह यथार्थ उतना ही नहीं है जो परस्पर बोलचाल की भाषा में (वाद-विवाद) प्रकट होता है या घर-गृहस्थी, कमरे या ड्राइंगरूम के परिवेश के भीतर से अपने को प्रत्यक्षतः प्रकट करता दिखाता है। वह यथार्थ—नहीं, महत्तर यथार्थ—इन सब साधनों से कहीं आगे अप्रत्यक्ष रूप से विकसित, स्वनिर्मित होकर काव्यात्मक यथार्थ के धरातल पर जा पहुँचता है।

और बुनियादी सवाल यही उभरता है—मिश्रजी ने इब्सन से वह बाहरी यथार्थ ही क्यों ग्रहण किया?

दरअसल नाटक के रंगमंच की दुनिया एक अप्रत्यक्ष संसार है। यूँ यह प्रत्यक्ष तो सबसे ज्यादा है, पर नाटक का यह प्रत्यक्षीकरण अभिनेता, निर्देशक, रंगशिल्पी की मध्यस्थता से मंच पर दर्शक के सामने होता है। यह एक विशिष्ट विधा ही नहीं, सब विधाओं से ज्यादा यह दूसरों से (दूसरी कलाओं, मनुष्य, कलाकार, अनुभव, सृजन) संयुक्त है।

पारसी थिएटर की प्रतिक्रिया में यही संपृक्तता पहले प्रसाद से टूटी और प्रसाद के बाद दोहरी प्रतिक्रिया से यह 'मिश्र', 'सेठ', 'प्रेमी', आदि के द्वारा तोड़ी गयी।

भाषा का अत्यधिक प्रयोग 'पारसी थिएटर और प्रसाद' दोनों में हुआ है। पारसी थिएटर में इसके अति प्रयोग के पीछे दो कारण थे—वहाँ अभिनेता एक ही बात को, भावना को दो तरह से दोहरे ढंग से कहता था—पहले वह दर्शक को बताता था, फिर वही स्वयं कहकर (मुख्यतः बहरे-तवील और अन्य छंदों में) उसी का अभिनय करता था, दूसरे उसमें 'प्रचारक' का भी अत्यधिक हस्तक्षेप था, इसलिए भाषा का अराजक प्रयोग हुआ था। पर बुनियादी ढंग से इस भाषा प्रयोग में अभिनेता इसके भीतर विद्यमान था और साथ ही इसमें दर्शक भी शामिल था। अतएव भाषा का यह अतिप्रयोग रंगमंच में घुलमिल गया था। इसी के अनुरूप उसमें अतिरंजनाप्रधान

चमत्कारमूलक घटनाएँ और कार्यव्यापार थे, इसलिए भी भाषा प्रयोग की वह अराजकता उसका अभिन्न अंग बन जाती थी। 'प्रसाद' में वही अभिनेता और दर्शकबोध पारसी थिएटर की तुलना में भाषा के भीतर से कुछ दूर छूट गया।

प्रसाद के बाद मिश्र, सेठ, प्रेमी के भाषा प्रयोग में वही अभिनेता और दर्शक अपेक्षाकृत गायब हो गए। इसके स्थान पर क्रमशः आ गए परस्पर वाद-विवाद करने वाले स्त्री-पुरुष (चरित्र नहीं) और 'पाठक'। और ये प्रचारक, कवि के स्थान पर तार्किक 'वकील' और 'बुद्धिवादी' लेखक हो गये। इस सृजन भूमिका पर, जब इन नाटककारों ने 'इतिहास', 'पुराण' की कथावस्तु और चरित्र लिये तो अपनी संस्कृति से स्वयं को जोड़ने के लिए इब्सन, 'प्रसाद', डी० एल० राय, 'पारसी थिएटर' सबको बुद्धि द्वारा बेधते हुए ये भरतमुनि तक पहुँचे और अपने नाट्य का सम्बन्ध अपने पूर्वजों से जोड़ने लगे।

असत्य को सत्य करने की यह विचित्र पद्धति शैक्सपियर के नाटकों तक अपने वेग से चलती रही। इब्सन ने शैक्सपियर के विरुद्ध प्रतिक्रिया की, पर हमारे दुर्भाग्य से द्विजेन्द्र लाल राय ने आँख मूँदकर शैक्सपियर का अनुकरण किया और वह अनुकरण देश की सभी भाषाओं पर छा गया। अब समय आया है जब देश के साहित्यकार अपने जातीय सिद्धांतों को समझें और अब से भी अपना सम्बन्ध अपने पूर्वजों से जोड़ें।

···'काव्येषु नाटकं रम्यम्'—भरत के इस कथन से यह निश्चित हो जाता है कि लोकवृत्ति का चित्रण, उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्यों के व्यापार, क्रिया-कलाप का निदर्शन नाटक या साहित्य का कोई भी अंग हो सकता है। लोकवृत्ति प्रकृति की बनाई है। कोई भी कवि कल्पना से उसका निर्माण नहीं करता।

जाहिर है, जहाँ सारा रंगमंच भाषा का है वहाँ 'नाट्य' की कवि कल्पना से क्या मतलब ? वहाँ मतलब होगा ऐसी अतिनाटकीय स्थितियों से जहाँ जमकर आर्य-अनार्य, ब्राह्मण-शूद्र, धर्म और संस्कृति, दर्शन और कर्म, वेदान्त और आनन्द, श्रेय और प्रेम, तथा व्यक्ति और समाज, नैतिकता बनाम अनैतिकता, राक्षस बनाम देवता, काम और सेक्स, आचार बनाम दुराचार,

सामाजिक भ्रष्टाचार और व्यक्ति, हिंसा और सद्वृत्ति पर वाद-विवाद हो सके। जहाँ भाषा के तीखे वाणों से असत्य का पर्दाफाश किया जाए। जहाँ हिन्दू धर्म की उदारता बनाम मजहबी तआस्सुब, हिन्दू-मुसलमान की एकता, नमाज और इन्सानियत, छूत-अछूत, साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता, मराठे, राजपूत और हिन्दुत्व बनाम मुगल संस्कृति और राम बनाम गाँधी, कर्त्तव्य और अधिकार, ज्ञान और शांति, बौद्ध धर्म बनाम ईसाई धर्म, संस्कृति और वर्गभेद, पाश्चात्य बनाम भारतीय जीवन दृष्टि तथा समाज और शोषण, अछूतोद्धार, पाप-पुण्य, हिंसा-अहिंसा, सेवा और महत्व, व्यक्ति और दुःख विषयों पर समुचित प्रकाश मिले। दर्शकों को ज्ञान भी हो और प्रकाश भी प्राप्त हो।

मैंने नाटकों की रचना निरुद्देश्य नहीं की है।···प्राचीन इतिहास हमारी शक्ति और दुर्बलता का दर्पण है। मैंने बार-बार यह दर्पण अपने देशवासियों के सम्मुख रखा है, ताकि हम अपने देश के अतीत को देखकर व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन से उन दुर्बलताओं को दूर करें, जिन्होंने हमें पराधीनता के पाश में बाँधा।

मानवीय विषयों और समस्याओं पर वाद-विवाद करने का तत्व इब्सन में खूब था, पर वहाँ हर नाटक में विषय एक ही था और समस्या भी एक ही ली जाती थी और नाटक का सारा यथार्थवादी ढाँचा, अपनी तमाम 'बातों', 'वाद-विवादों', तर्कों के बावजूद रंगमंचीय कार्य से उद्भूत होता था। यहाँ इन नाटकों में प्रत्येक नाटक में कई विषय, कई समस्याएँ होती हैं, और प्रत्यक्षतः इनका सारा रंगमंचीय विधान न किसी एक निश्चित कार्य से उद्भूत होता है, न किसी नाटकीय चरम परिणति से इनका कोई सम्बन्ध जुड़ता है।

मानवीय भावनाओं, क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं पर व्याख्या, टीका-टिप्पणी, चरित्रों के मनोवेग को सूचित-परिभाषित करने की परम्परा संस्कृत नाट्य से लेकर शेक्सपीयर, पारसी थिएटर और 'प्रसाद' तक हमें मिलती है। पर वहाँ वह विशिष्ट तत्व उसके रंगमंच प्रकार और अभिनय शैली के भीतर से आता है। वहाँ सारे रंगमंच की प्रकृति ही ऐसी है।

पर यहाँ रंगमंच की प्रकृति और उसकी रंग-शैली परस्पर विरोधी

शैलियों के तालमेल तथा गडमड के कारण और मूलतः इसमें जीवित रंगमंच बोध की विहीनता के कारण 'पाठ्य' तत्व प्रमुख हुआ । और उसमें भी संस्कृति, इतिहास, जीवनादर्श जैसे भारी-भरकम विषयों का भार पड़ा। फलतः यहाँ सब कुछ मूल रूप से 'कहा गया', 'लिखा गया', 'बताया गया', 'विचार-विनिमय हुआ'—'जिया' और 'रचा' नहीं गया।

पारसी थिएटर या पश्चिमी ड्रामा के दबाव और प्रतिक्रिया स्वरूप और अपनी रंगआस्था के फलस्वरूप 'भारतेन्दु' और 'प्रसाद' में रंगमंच और अभिनय शैली की जो तलाश है, प्रयत्न है, वह यहाँ सर्वथा लुप्त है। यहाँ सारा इतिहास संस्कृति, जीवनादर्श, राष्ट्रीयता, व्यक्ति समाज के विचार स्तर पर है।

इन नाटककारों के नाट्यचरित्र कर्म करने की अपेक्षा बोलते ज्यादा हैं। पारसी थिएटर में चरित्र बोलते भी थे, और यही कार्य भी करते थे। वहाँ वस्तुतः 'कार्यकथन' और 'कार्य-संपादन' दो धरातलों पर, उस रंगमंच प्रकृति के अनुकूल प्रस्तुत होता था। 'कथन', 'संभाषण', कल्पना जगाने, सूचना देने के उद्देश्य से और वही कार्य-संपादन 'दृश्यत्व' के लिए होता था। अर्थात् एक ही बोध को शब्द से लेकर कार्य तक गतिमान करना, चर्चित देखना, ताकि उसमें मानवीय गति, कार्य-बोध पैदा हो।

पर यहाँ 'बोलना' प्रायः वाद-विवाद, मानसिक संघर्षों के सूचनार्थ और ज्ञान-प्रदर्शन के स्तर पर होता है। इसलिए यहाँ नाट्य संप्रेषणीयता अपेक्षाकृत 'पाठ्य' के एक ही स्तर पर होती है। यहाँ अनेक दृश्यों के अभिनय बल्कि कुछ संपूर्ण नाटकों के अभिनय केवल बैठकर ही, बिना उठे, घूमे ही किया जा सकता है।

यहाँ चरित्र—ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक सभी प्रकार के नाटकों में अपने संघर्षों को अनुतप्त भाषा, दग्ध वाक्यांशों, आश्चर्यजनक संभाषणों, तीव्र वाद-विवादों द्वारा भी प्रकट करते हैं। जैसे प्रायः चरित्र पाठकरूपी न्यायाधीश और जूरी (दर्शक) के सामने विचारों के विविध कठघरों में खड़े हो वकील की तरह परस्पर बहस कर रहे हों और अपने विश्वासों, स्थापनाओं के लिए नजीरें, गवाहियाँ, उक्तियाँ, उद्धरण आदि पेश कर रहे हों। इसी का एक फल यह भी है कि इन सभी नाटकों में एक-

से-एक सूक्तियों, आप्तवाक्य, सूत्रवचन और महावाक्य भरे पड़े हैं। इसे निश्चित ही 'बुद्धि' और 'भावना' प्रयोग का फल ही कहा जा सकता है।

भाषा रंगमंच के कारण इन नाटकों में विषय, प्रस्ताव, थीसिस, प्रबंध की भूमि खूब स्पष्ट होकर सामने आयी है।

'प्रसाद' जहाँ पारसी थिएटर की प्रतिक्रिया और अपनी आस्थावश भारत के इतिहास की वास्तविकता पर बल दे रहे थे, और इससे उस पूरे काल की सांस्कृतिक स्थिति नाटक में झलक आती थी—ठीक इससे आगे अब नाटक ऐतिहासिक पौराणिक न होकर विशुद्ध, 'सांस्कृतिक' होने लगे, अपने कथ्य और उद्देश्य इन दोनों धरातलों से।

हर नाटक एक पूर्वनिश्चित, निर्धारित प्रस्ताव, थीसिस या प्रबन्ध मूल्य पर आधारित हुआ।

वस्तुतः ये सारे नाटककार मानववादी थे। राष्ट्रीय संग्राम और पुनरुत्थान की भावना से बहुत नज़दीक से जुड़े थे। अतएव इनमें हर बिन्दु पर आदर्श और यथार्थ, परम्परा और विद्रोह, पुराना और नया के बीच इनके निश्चित विश्वास, भावनाएँ तथा विचार थे। उन्हीं को ये लोग नाटक में विषय-वस्तु बनाते थे। उसी को अनेक तर्कों और उपायों से सिद्ध करते और खण्डित-मण्डित कर अपने एक पूर्वनिश्चित हल पर पहुँचते थे। यही कारण है कि इन सभी नाटककारों की नाट्य-रचनाएँ पठन-पाठन, ज्ञान-बुद्धि और तर्कों पर खड़ी हैं। अनुभूति और व्यंजना पर नहीं। 'भाषा-प्रयोग' की प्रकृति से स्पष्ट है कि ये सभी अपने एक निश्चित विचार, स्थापना, प्रबन्धबोध के चारों ओर भाषा-संवाद का मकड़ीजाल बुनते रहते हैं। इस बनावट में सर्वत्र वही बुद्धि, भावना और तर्क के फन्दे मिलेंगे।

तभी यहाँ हर नाटक का आरम्भ एक विचार, एक प्रस्ताव, एक समस्या का 'आरम्भ' है और बीच का सारा भाग उस समस्या पर विचार-विनिमय के घात-प्रतिघात का मध्यभाग है और अन्त उस विचार, प्रस्ताव और उस समस्या की समाप्ति, हल या उपसंहार का है। 'यहाँ नाटक की समस्या इब्सन, शैक्सपियर, 'प्रसाद' की तरह अपने पूर्व पर नहीं टिकी होती, न वह भविष्य के लिए छोड़ ही दी जाती है, वरन् प्रस्ताव, प्रबन्धबोध के अनुरूप हर नाटक के साथ समस्या शुरू होती है और उसके अन्त में वह समस्या

समाप्त हो जाती है।' मिश्रजी और प्रेमी इसमें अत्यन्त कुशल हैं। सेठजी आदि और अन्त के बारे में उतने निश्चित और स्पष्ट नहीं हैं, इसके लिए इन्होंने अपने नाटकों में 'उपसंहार' का सहारा लिया है, ताकि एक शिक्षक, नेता, सुधारक, बुद्धिजीवी के चिन्तन का प्रभाव पैदा हो, और समस्या कहीं से भी शेष न रह जाए।

इन नाट्य तथ्यों का अन्ततोगत्वा प्रभाव इनके नाट्य विधान पर पड़ा है। इस प्रसंग में सर्वाधिक उल्लेखनीय तत्व वह है जहाँ नाटक का सारा विधान बुनियादी तौर पर नाटक की अपेक्षा कथात्मक रंगविधान के समीप आ गया है।

कथा और चरित्रविधान में यह इतिवृत्तात्मकता— आदि, मध्य और अन्त बल्कि उपसंहार तक फैली हुई है, और नाटकीय गति में यह घटनात्मक और भावुकतापूर्ण कार्यों की परिसमाप्ति में।

इस तथ्य की पहचान इन नाटकों के अंकविधान और दृश्ययोजना से होती है। चाहे सांस्कृतिक ऐतिहासिक नाटक हो, चाहे सामाजिक, अंक अथवा दृश्यविधान बिल्कुल कथा साहित्य-सा (पाठ्य) होता है। शुद्ध पाठकों को ध्यान में रखकर दृश्य यहाँ लिखे गए हैं, वर्णित एवं कथित है, रंगमंच को ध्यान में रखकर नहीं।

जगदीशचन्द्र माथुर के 'कोणार्क' नाटक से आधुनिक नाटक और रंग-मंच की परम्परा फिर से उदित होती है। आधुनिक बोध में वर्तमान और भूत (इतिहास) के बीच जो व्यवधान उपस्थित होता है उसे कलात्मक सेतु द्वारा जोड़ना तथा अतीत के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान को अभिव्यक्ति देना एक महत्वपूर्ण लक्षण है। दूसरी ओर 'कोणार्क' के द्वारा नाटक के स्तर को आंतरिक अनुभूति और काव्य-स्तर से जोड़ देना, रंगमंच पक्ष के तत्वों का समन्वय कर एक नया रंग प्रयोग करना—ये सारे लक्षण तथा विशेषताएँ 'कोणार्क' की हैं! 'कोणार्क' की समूची संरचना में मन्दिर के गिरने का कार्य है। उस पर रेडियो-शिल्प का अमिट प्रभाव है। रेडियो के इस तत्व ने नाटक के अन्तिम भाग को रंगमंच के स्तर से निर्बल बनाया है, यह सत्य स्पष्ट है।

स्वतन्त्रता के बाद आधुनिक हिन्दी-नाटक और रंगमंच का महत्वपूर्ण

चरण प्रारम्भ होता है। परम्परा, प्रयोग, प्राचीन और नवीन, पूर्व और पश्चिम इन सब रंग-दृष्टियों का सम्यक् अध्ययन प्रारम्भ हुआ। इससे भी आगे व्यावहारिक नाट्य प्रशिक्षण, रंग-अध्ययन और प्रस्तुतीकरण के क्षेत्र में व्यावहारिक कार्य शुरू हुए। हिन्दी-क्षेत्र के प्रमुख नगरों में संस्कृत, अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के नाटक खेले जाने लगे तथा नाटककार पहली बार रंगमंच से व्यावहारिक क्षेत्र में आया तथा अभिनेता रंग-शिल्पी और दर्शक के बीच बैठकर कार्यरत हुआ। इस व्यापक परिवेश और रंग-चेतना के भीतर से कई महत्वपूर्ण शक्तिशाली आधुनिक नाटक हिन्दी में प्रयुक्त हुए। इन सभी नाट्य-कृतियों में अभूतपूर्व शक्ति यह है कि इनमें रंगमंच पक्ष और साहित्य पक्ष, दोनों अपने श्रेष्ठ बिन्दुओं पर प्रतिष्ठित हैं और इन सब में व्याप्त जीवन-बोध और रंग-दृष्टि आधुनिकता के अनेक संदर्भों में सार्थक है।

●●

'मन्नू' नाटक के बारे में

'मन्नू' नाटक श्री लक्ष्मीनारायण लाल की नवीनतम नाट्यकृति है। इस नाटक की कथावस्तु बड़ी सरल और सहज है। किशोर नामक उच्च अधिकारी जिलाधीश के रूप में किसी छोटे-से शहर में तैनात है। उसकी ईमानदारी, न्यायप्रियता, उच्च चरित्र आदि गुणों का लोगों पर काफी प्रभाव है। पर ऐसे अधिकारी को वे लोग बिल्कुल नहीं पसन्द करते, जो ऊपर के धन्धों में, जैसे गलत ढंग से व्यापार करना, गुण्डों की राजनीति करना, किसी प्रकार की कानून-व्यवस्था को न मानना—ऐसे कामों में लगे हुए हैं।

किशोर जिस नये शहर में आता है वहाँ के एक शक्तिशाली व्यापारी मोहनदास, जिसकी साँठ-गाँठ कालीप्रसाद नामक राजनेता से है, के खिलाफ वह एक प्रबन्धात्मक कदम उठाता है। मोहनदास का माल-गोदाम, जहाँ गलत धन्धे चल रहे थे उसको सील कर देता है और उसके खिलाफ उचित कार्रवाई करता है। मात्र इतनी-सी घटना के कारण किशोर के जीवन में भीतर-बाहर दोनों धरातलों पर किस प्रकार की यथार्थ आँधी उठ खड़ी होती है उसी का नाट्य-दृश्य 'मन्नू' की कथावस्तु है।

किशोर के खिलाफ जैसे सारी शक्तियाँ खड़ी हो जाती हैं। उसका व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन सब कुछ जैसे एक अस्तित्ववादी संकट के बिन्दु पर आ खड़ा होता है। एक ओर कालीप्रसाद जैसी अन्धराजनीतिक शक्ति उसके खिलाफ खड़ी होती है। दूसरी ओर उसके खिलाफ वह बलात्कार का झूठा आरोप लगाकर एक झूठे मामले में फँसा देता है। तीसरी ओर वह अपने घर में अपनी पत्नी के सामने, पिता के सामने, और अपने मित्र नरेश के सामने एक ऐसी लड़ाई का पात्र बनता है जिसकी उसने कल्पना तक नहीं की थी।

नाटक में कालीप्रसाद की आवाज गूँजती रहती है—"जैसा हुक्म सर-

कार। इन भ्रष्ट पूँजीपतियों के खिलाफ आपने जो कुछ किया सब अच्छा किया। और करें मिलावट, कालाबाजारी, और करें ब्लैकमेल, बेईमानी, टैक्सचोरी। और खरीदें एम० एल० ए०, एम० पी०, मिनिस्टर, चीफ मिनिस्टर·····परन्तु सर, हुजूर, एक बार मोहनदास जी को माफ कर दीजिए।"

किशोर जिलाधीश है। उसके अभूतपूर्व साहस की तारीफ अखबारों में प्रकाशित है। उसकी पत्नी अरुणा महिला मनोरंजन क्लब का उद्घाटन करती है। पर वह नहीं जान पाती कि उसका पति किशोर किस गहरे संकट में जा फँसा है। इस संकट का पर्दा उठाता है किशोर का अन्तरंग मित्र, नरेश। वही किशोर के उस विद्यार्थी जीवन के चरित्र का रहस्योद्घाटन करता है जहां वह बिल्कुल दूसरे प्रकार का युवक था।

मेधावी छात्र के अलावा किशोर उस समय रीना नामक सहपाठिनी से प्रेम करता था। और उसके प्रति तमाम कवितायें लिखता था। उस प्रेम का मध्यस्थ था—यही नरेश। यह सम्बन्ध किशोर का अंतरंग पक्ष है। इसी अन्तरंग पक्ष पर आज संकट उभर आया। इस संकट पर पर्दा पड़ा है किशोर के रहन-सहन तथा उसके चारों ओर के वातावरण का। इस वातावरण को एक ओर रँगती हैं श्रीमती किशोर अर्थात् अरुणा, दूसरी ओर रीता—मिसेज नागलोई।

किशोर आज क्या हो गया है, उसका चित्र उसके घर के दृश्यों से प्रकट होता है, जहाँ वह महसूस करता है कि जब तक अपने से प्रेम नहीं है, दूसरे से प्रेम नहीं हो सकता; जब तक अपने को जाने नहीं कि मैं कौन हूँ, तब तक कोई अपने आप से प्रेम नहीं कर सकता। किशोर की इस बात को लोग किताबी बातें कहते हैं। आज किशोर को एक ही बात चारों ओर से सुनाई पड़ती है—कुछ चाहिए? जैसे अब यही एक सवाल रह गया है और इस 'चाहिए' के भीतर केवल दो ही चाह रह गयी हैं—धन की और नंगे भोग की। जैसे सारी लड़ाइयों के केन्द्र में केवल यही बात रह गयी है। इस केन्द्र से साक्षात्कार होते ही किशोर को इतने वर्षों के बाद स्पष्ट दिखाई पड़ जाता है कि उसकी बुनियाद में किताबें हैं, जो नौकरी के लिए उसे पढ़नी पड़ी हैं। जिन किताबों के विचारों से उसके यथार्थ जीवन का कोई, किसी

तरह का रिश्ता नहीं है। यहीं उसे दिख जाता है कि उसका अनुभव प्रत्यक्ष जीवन का नहीं है। जीवन बिल्कुल कुछ और है वह कुछ और है। उसके लिए जैसे सब कुछ दो में बँट गया है—शरीर-आत्मा, नौकरी-आजादी, गुलामी-स्वतन्त्रता, प्रेम-कैरियर, थॉट-एक्शन। मतलब जो कुछ उसने चाहा वह नहीं कर सका। जो कुछ वह नहीं होना चाहता था वही उसे होना पड़ा। इसी बिन्दु पर किशोर का अपने पिताजी से साक्षात्कार है। पिताजी को देखते ही वह जैसे घायल हिरन की तरह तड़प उठता है। सच्चाई और मजबूरी का, यथार्थ और आदर्श का संघर्ष शुरू हो जाता है। किशोर जैसे पिताजी के सामने चीख-चीखकर कहने लगता है :

किशोर : मैं कंपटीशन में नहीं बैठना चाहता था, आपने कहा—बेटे, मेरी इज्जत के लिए बैठ जाओ। मैं अभी शादी नहीं करना चाह रहा था, आपने एक सुयोग्य कन्या डिग्रियों और सर्टिफिकेट से लैस, मुझे विवाह बन्धन में···आप हमेशा आदर्शवादी रहे हैं, कुछ जीवन मूल्य रहे हैं, पर आपके चारों ओर की दुनिया? आपने कहा—बेटे, सच बोलना, सच्चाई का जीवन जीना, आदर्शों से गिरना नहीं। इसका नतीजा क्या निकला? किसी भी पोस्टिंग में एक साल से ज्यादा नहीं रह पाया। काम करना शुरू नहीं किया कि ट्रांसफर। एक पोस्टिंग से दूसरी पोस्टिंग। पर चार्ज लेने से पहले ही वहाँ खबरें पहुँच जाती थीं—सावधान, ईमानदार है, बेवकूफ!

पिताजी : ईमानदारी का फल खुद को नहीं मिलता, बेटे। सच्चाई और ईमानदारी की कीमत चुकानी पड़ती है। देखो मुझे···सीधे पोस्टमास्टर हुआ था, वहीं से चुपचाप रिटायर हो गया, आगे कोई तरक्की नहीं। कितनी इंक्वायरी बैठीं मेरे खिलाफ। कितने डिपार्टमेंटल केस। ईमानदारी का फल दूसरों को मिलता है, बेटे। दरख्त अपना फल कभी नहीं खाता। पहाड़ से नदी चलती है। पहाड़ को नदी का पानी नहीं मिलता। पानी समुद्र को मिलता है। समुद्र से भाप बनकर बादल। बादल फिर पहाड़ पर··· फिर नदी···ऐसे ही होता है। सीधे नहीं। सीधा

उल्टा नहीं हो सकता। हर चीज़ घूमकर अपने 'रूट्स'—मूल पर पहुँचती है।

किशोर : आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।

पिताजी : आओ, ईश्वर से प्रार्थना करें—और कोई उपाय नहीं है।

किशोर : पिताजी !

पिताजी : डरो नहीं।

किशोर : पिताजी, आप नहीं जानते, मुझ पर क्या-क्या हुआ है।

सचमुच आज इस स्थिति पर पहुँचे हुए व्यक्ति के मन में और उसके जीवन पर क्या-क्या नहीं गुजर जाता ! इसे देखना ही इस नाटक को देखना है। पिताजी कहते हैं जो कुछ भी किशोर के चारों तरफ हो रहा है वह महज लड़ाई का ड्रामा है। संदेह है तभी तो इंसान ऐसा हो रहा है। इस बिन्दु पर पहुँच कर किशोर जैसे अपने अन्तस को खोलकर अपने पिता के सामने रख देता है : "मैं कुल सात साल का था जब माँ नहीं रही, आप तीस साल के थे तब। मुझे झूठ, गन्दगी, अन्याय, बदतमीजी बिल्कुल बर्दाश्त नहीं। रोज मारपीट और लड़ाई करके घर आता था। एक दिन आपने कहा था—किशू, यह लड़ाई-झगड़ा करने की आदत छोड़ दो, नहीं तो दुनिया कहेगी—बिना माँ का बिगड़ गया। उस दिन से मैं···। आज मुझ पर यह आरोप लगाया जा रहा है कि मैंने मिस चन्द्रा के साथ···। आज मुझ पर उस जगह चोट की जा रही है, जो मेरे बर्दाश्त के बाहर है।"

मिस चन्द्रा के साथ बलात्कार का प्रसंग अपनी आत्मा के साथ बलात्कार के प्रसंग जैसा है। यह इस नाट्यकृति की सबसे महत्वपूर्ण बात है। इसी बात पर पूरा नाटक ज़िन्दगी के कई प्रश्नों को उठाकर हमारे सामने रख देता है। विशेषकर यह प्रश्न करता है कि सत्ता और शक्ति क्या है ? क्या पावर डिफीट से नहीं जुड़ा है ? क्या ताकत गुलामी नहीं है ?

इसी प्रश्न के केन्द्र से इस नाटक में किशोर और चन्द्रा को आमने-सामने रखकर जो जीवन का साक्षात्कार नाटककार ने कराया है यह अप्रतिम है।

किशोर : कौन हो तुम ?

चन्द्रा : असली मिस चन्द्रा की हत्या कर नकली मिस चन्द्रा। इम्पोस्टर ! मैं असली मिस चन्द्रा हूँ या नकली, तुम जरूर वही असली किशोर सिन्हा हो, जिसके बचपन का नाम मन्यू था, या उसकी हत्या कर तुम इम्पोस्टर किशोर सिन्हा हो ?

किशोर : मन्यू नाम तुम्हें कैसे पता ?

चन्द्रा : तुम मन्यू से कैसे मन्नू हो गये ?

किशोर : तुम रीना की बहन तो नहीं ?

चन्द्रा : पासपोर्ट में फोटो एटेस्ट कराने के लिए तब यह नाम लिया था, तब तुम बहरे थे।

किशोर : तुम···रीना·····।

चन्द्रा : पासपोर्ट बन गया। इंग्लैंड भी हो आयी। लेकिन तुम्हारी बदतमीज़ी माफ नहीं कर सकी। रीना ने माफ किया। मैं माफ करने वाली नहीं—जो भी कीमत देनी पड़े। हाँ, अब करो सवाल।

किशोर : (मौन)

चन्द्रा : मैन आफ कैरेक्टर, आनेस्टी···जस्टिस। ये महज अल्फाज़ हैं—किताबी, रटे-रटाये। (जाने लगना।)

किशोर : रुको।

चन्द्रा : कहिए।

किशोर : तुमने ऐसा क्यों किया ?

चन्द्रा : तुमने वह क्यों किया ?

किशोर : होश में रहो।

चन्द्रा : वह तुम्हारी ड्यूटी है।

किशोर : सुनो। ··मेरी ओर देखो। गलती किससे नहीं होती ? इतनी जिम्मेदारियाँ, दौड़धूप, तरह-तरह की चिन्ताएँ। ज़िन्दगी की सारी बनावट ऐसी है कि कहीं सुख नहीं है—जन्म, बचपना, पाना-छिपना, पढ़ाई-लिखाई, नौकरी-बीमारी, कोई अन्त है ? इनसे लड़ाई का अन्त भी यदि वही दुख है तो भूलना ही···।

चन्द्रा : इस बकवास का मेरे ऊपर कोई असर नहीं।

किशोर का नाम मन्नू है। मन्नू बड़ा प्यारा नाम है। बोलने में भी बड़ा प्यारा है और इसके साथ बर्ताव भी करना बड़ा आसान है। अब लोग विशेषकर माता-पिता किसी बच्चे का नाम अभिमन्यु नहीं रखते, क्योंकि

अभिमन्यु नाम रखने से बड़ा संकट उपस्थित होता है। वह संकट डा० लाल के 'मिस्टर अभिमन्यु' नाटक की विषयवस्तु है।

यह किशोर अब वह अभिमन्यु नहीं है बल्कि केवल मन्नू है जो केवल मन्नू है, जो सबका आज्ञाकारी है, किसी का विरोधी नहीं रह गया है और जिसे केवल एक ही बात बताई गई है कि दूसरों की सेवा करते रहना, दूसरों के लिए सदा ज़िम्मेदार रहना।

पर मन्नू के लिए कौन ज़िम्मेदार होगा ? जिसे नाटक के अन्त में पिता द्वारा यह बताया जाता है कि तुम्हारा नाम मन्नू नहीं, मन्यु है। अपना यह असली नामक सुनकर वह पिता का मुख देखता रह जाता है।

पिताजी के मुंह से फूटता है—"उदास मत हो, और कमज़ोर हो जाओगे। इतने निर्बल हो ? मैं ज़िम्मेदार हूँ। निराशा तुम्हें भीतर से तोड़ती चली जाएगी। यह दुनिया भीतर से बड़ी ठोस है। लो यह छड़ी, मार-मार कर मेरी खाल उधेड़ लो, क्रोध पैदा हो जाए, मुझसे मुक्त होकर चल पड़ो। मारो।"

किशोर छड़ी लेकर पिताजी पर प्रहार करना चाहता है, पर कर नहीं पाता।

□

नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल और उनकी कृतियों का परिचय

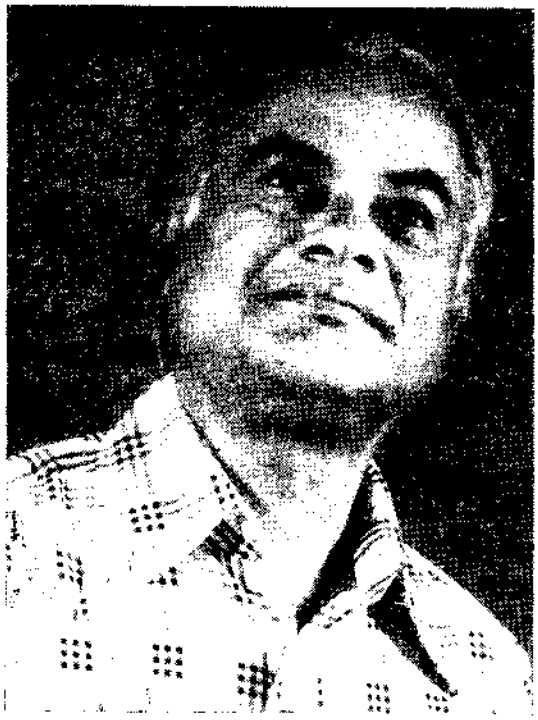

लक्ष्मीनारायण लाल आधुनिक हिन्दी साहित्य के परम महत्वपूर्ण नाटककार, कथाकार और साहित्य के विभिन्न अंगों के मर्मज्ञ और कला जीवन के चिन्तक हैं। इन्होंने मौलिक साहित्य सृजन के साथ-ही-साथ मौलिक जीवन के चिन्तन में महत्वपूर्ण योग दिया है। जयशंकर 'प्रसाद' के बाद मोहन राकेश और लक्ष्मीनारायण लाल ही वे दो नाटककार हुए हैं जिन्होंने सही और सम्पूर्ण अर्थों में हिन्दी नाट्य को आधुनिक बनाया। विशेषकर लाल का नाम इसलिए सर्वाधिक उल्लेखनीय है कि इन्होंने अपने नाटकों द्वारा एक

ओर भारतीय रंगमंच की जीवंत परम्पराओं, प्ररणाओं को अपने नाट्य लेखन में नए संदर्भ दिए और दूसरी ओर इन्होंने भारत के 'नाट्य' को, उसके रंगमंच की प्रकृति को गहराई से समझ कर देखा है। इन्होंने भारतीय और पाश्चात्य नाट्य के समन्वय के विश्वास का खण्डन किया है। इनका कहना है कि पूर्व और पश्चिम का कभी भी समन्वय नहीं हो सकता, विशेषकर कला और साहित्य सृजन के क्षेत्र में।

जीवन परिचय

लक्ष्मीनारायण लाल का जन्म ४ मार्च, १९२७ में उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के एक गाँव—जलालपुर में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के स्कूल में और हाई स्कूल, इण्टरमीडियट शिक्षा बस्ती शहर में प्राप्त की। प्रयाग विश्वविद्यालय से हिन्दी में (१९५०) एम० ए० और '**हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि**' पर सन् '५२ में डाक्ट्रेट।

इसके बाद प्रयाग विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय के कालेजों में अध्यापक होकर विश्वविद्यालय की उच्चस्तरीय शिक्षा और अनुसंधान कार्य में महत्वपूर्ण योग दिया। इस बीच कुछ दिनों के लिए आकाशवाणी में ड्रामा प्रोड्यूसर। १९६४ में विश्व नाटक सम्मेलन, रूमानिया में भारतवर्ष की ओर से अकेले नाटककार के रूप में प्रतिनिधित्व किया। नेशनल ग्रीक थिएटर, एथेन्स में आमन्त्रित किए गए।

इलाहाबाद में नाट्य केन्द्र 'स्कूल आफ ड्रामैटिक आर्ट्स' की स्थापना और इनके द्वारा उसके संचालन और निर्देशन से हिन्दी क्षेत्र में नाटक और रंगमंच के प्रति लोगों में गहरी रुचि पैदा हुई। अनेक अभिनेता, निर्देशक इस नाट्य केन्द्र से रंग संस्कार और प्रशिक्षण लेकर हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में कार्यरत हुए।

दिल्ली में 'संवाद' रंगमंच संस्था का निर्माण कर और दिल्ली विश्वविद्यालय में एम० ए० हिन्दी के पाठ्यक्रम में नाट्य और रंगमंच का प्रशिक्षण और अध्यापन कर डा० लाल ने राजधानी में गम्भीर रंग कार्य किया।

कृतियाँ

'मादा कैक्टस' नाट्य-कृति के साथ लाल ने हिन्दी नाट्य क्षेत्र में पदार्पण किया। इसके पूर्व कुछ एकांकी लिखकर अपने विद्यार्थी जीवन से ही इन्होंने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया—विशेषकर डाक्टर रामकुमार वर्मा, वृन्दावन लाल वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का ध्यान। विद्यार्थी जीवन में लिखे हुए वे एकांकी नाटक क्रमशः 'ताजमहल के आँसू' और 'पर्वत के पीछे' एकांकी संग्रहों में संग्रहीत हैं।

इलाहाबाद के नाट्य केन्द्र के जीवन काल में 'सुन्दररस', 'रातरानी', 'दर्पन' और 'रक्त कमल' नाटकों की रचना की। ये नाटक पूरे हिन्दी क्षेत्र में प्रस्तुत होने लगे। कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली के प्रसिद्ध नाट्य संस्थाओं जैसे 'अनामिका' (कलकत्ता), 'थिएटर यूनिट' (बम्बई) आदि ने इन नाटकों को प्रस्तुत किया।

दिल्ली के जीवन काल में क्रमशः 'कलंकी', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'सूर्यमुख', 'कर्फ्यू', 'अब्दुल्ला दीवाना', 'एक सत्य हरिश्चन्द्र', 'व्यक्तिगत' की रचना की। ये नाटक 'नेशनल स्कूल आफ़ ड्रामा', 'अभियान' और 'यात्रिक' जैसे प्रसिद्ध रंगदलों द्वारा खेले गए। इन नाटकों के अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुए और इस तरह पठन-पाठन और प्रदर्शन, इन सभी स्तरों से लक्ष्मीनारायण लाल अखिल भारतीय स्तर के परम महत्वपूर्ण नाटककार के रूप में सर्वत्र स्थापित हुए। १९७७ में राष्ट्रपति द्वारा संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और १९७९ में साहित्य कला परिषद्, दिल्ली प्रशासन द्वारा सम्मानित किए गए।

मौलिक नाट्य रचना के साथ-ही-साथ रंगमंच प्रदर्शन, निर्देशन से गहरे रूप में सम्बद्ध रहने के कारण डा० लाल ने रंगमंच अनुसंधान क्षेत्र में चार महत्वपूर्ण ग्रंथ दिए—'रंगमंच और नाटक की भूमिका', 'पारसी हिन्दी रंगमंच', 'हिन्दी रंगमंच और नाटक', 'रंगमंच : देखना और जानना'।

१९७० में दिल्ली विश्वविद्यालय की नौकरी छोड़कर और कुछ ही दिनों बाद 'नेशनल बुक ट्रस्ट' में सम्पादक की नौकरी से त्यागपत्र देकर डा० लाल गत वर्षों से स्वतन्त्र लेखक हैं। नाटक के अलावा कथासाहित्य भी रचा है। आपकी औपन्यासिक कृतियों में 'मनवृन्दावन', 'प्रेम अपवित्र नदी', 'हरा समन्दर गोपी चन्दर', बहुत प्रसिद्ध हैं।

मन्नू

पहला अंक

पहला दृश्य

[जिलाधीश के बंगले का कमरा। एक फोन की घंटी बज रही है। दूसरे फोन पर न जाने क्या सुनते-सुनते गुस्से से फोन पटकना। दूसरा फोन उठाकर।]

किशोर : हूँ·····हूँ·····यस·····सब को आर्डर जा चुके हैं। हाँ हाँ·····। सील एव्री थिंग ! यह मेरा आर्डर है। सुनो। हाँ, एस० पी० को आर्डर जा चुके हैं। पूरा फोर्स है। (फोन रखना, फिर घटी) हेलो, हाँ यस·····क्या ? एस० एस०पी० साहब को दो····· हलो·····हाँ·····हाँ·····अच्छा, मालगोदाम के भीतर से मोहनदास के आदमी बाहर नहीं आ रहे हैं ? हूँ·····हूँ·····ऐसा ? अच्छा·····हूँ·····सारे इंस्पेक्टर हैं वहाँ ? उनके बयान ले लीजिए। तीन बार वार्निंग देकर चारों तरफ से सील कर दीजिए। यस,····· जी हाँ·····आफिस में रहूँगा। जी हाँ, बिल्कुल।

(फोन रखना। इस बीच अरुना आई हुई खड़ी थी।)

किशोर : आई एम सॉरी, यहाँ कोई आये नहीं।

अरुना : आपसबकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर क्यों ले लेते हैं ?

किशोर : ज़िम्मेदार हूँ।

अरुना : पर ज़मींदार तो नहीं हैं।

किशोर : देखो, मज़ाक मुझे कतई पसंद नहीं।

अरुना : अच्छा, यह बता दो, तुम्हें क्या पसंद है ?

किशोर : अन्दर जाओ।

अरुना : वही मोहनदास का मामला है ? (सन्नाटा) काफ़ी लेंगे ?

किशोर : दफ्तर जाना है।

अरुना : दफ्तर या कोर्ट ?

किशोर : कोई फर्क नहीं रह गया।

अरुना : ऐसे क्यों बोलते हो ? (पुकारना) चमन, चपरासी, चमन !

(चमन का आना। साहब का मूड देखते ही चले जाना।)

अरुना : तुम्हारी कलम यहाँ पड़ी है। (उठाकर देना चाहना।)

किशोर : रख दो वहीं। कहीं रख दो। क्या देख रही हो ? (लेकर) यहाँ कैसे गिरी पड़ी थी ?

अरुना : आज कुछ……।

किशोर : हाँ, कुछ नहीं, बहुत कुछ, बल्कि सब कुछ।

अरुना : मुझे कुछ नहीं बतायेंगे।

किशोर : बताने लायक कुछ हो तो……।

अरुना : लंच पर आयेंगे न ? इन्तज़ार करूँगी।

किशोर : इतनी हिम्मत ! किसी को कोई डर नहीं ?

अरुना : अब क्या ढूँढ़ रहे हैं ?

किशोर : देखना है……वक्त बिल्कुल नहीं है।

अरुना : मुझे बताइये, मैं कुछ मदद……।

(कागजों, फाइलों के बीच कुछ ढूंढ़ना। नहीं पा सकना। परेशान। तेज़ी से निकल जाना।)

(आफिस में दृश्य)

किशोर : कोई मिलने आये, मना कर देना। कोई भी हो समझे ?

चमन : यस सर।

(जाना)

किशोर : सिर्फ दो ही रंग नहीं हैं, काला और सफेद। और भी रंग हैं। पर हमें कुछ पता नहीं था। किसी ने कभी कुछ बताया ही नहीं। हम केवल ढोंग जी रहे हैं या फिर जी रहे हैं भय !

किशोर : मैंने अब तक क्यों बर्दाश्त किया? क्यों ? नहीं……।

(बाहर चमन और काली प्रसाद की बोलचाल। काली प्रसाद का चमन को धक्का देते हुए ज़बर्दस्ती आना।)

काली : बच्चे हैं अभी। समझ नहीं है। देखते नहीं, कौन क्या है, कहाँ है ? ऊँच-नीच नहीं देखते, बस साले हुकुम के गुलाम ! अरे गुलाम के ऊपर बीवी है, बीवी के ऊपर बादशाह है, बादशाह के ऊपर इक्का है,……ठीक।

(इसी बीच कालीप्रसाद ने अपने कुर्ते, बन्डी के नीचे कमर पर झूलती हुई पिस्तौल को फिर से दिखाते हुए छिपा लिया है।)

काली : कहिये और क्या हाल-चाल हैं ? सब ठीक-ठाक ? राजी-खुशी, सब परमात्मा का, क्या कहते हैं कि खेल है। उसकी मर्ज़ी के खिलाफ एक पत्ता भी इधर से उधर नहीं हिलता। (इस बीच सामने की

कुर्सी पर ज़बरन बैठ जाना।) आप भी बैठो न, साहब। बैठे-बैठे थक भी तो जाते हैं। क्या कहते हैं, रक्तचाप, ब्लडप्रेशर, बड़ा टेन्शन का ज़माना है न, सर। (सिगरेट दागना, पीना) आप में तो, सर, कोई दुर्गुण ही नहीं है।

किशोर : ऐशट्रे में·····।

काली : आदत नहीं है।

किशोर : देखिए, आप कल आइए, इस वक्त·····।

काली : कल किसने देखा है। ऐसा है, आपने अपना काम कर दिया। आप सरकार हैं, हुकूमत हैं, आपका एक्शन हो गया। मोहनदास का सब कुछ बन्द—सील! हुजूर आपको कोई खबर है—कोई मिस चन्द्रा ने यह एफ०आई०आर०आपके खिलाफ····· (कागज दिखाना) रखिए·····रखिए, देखलीजिएगा। मेरे पास कई प्रतियाँ हैं।

किशोर : बस, हो गया न, अब जाइए।

काली : बलात्कार के मामले में, हाई कोर्ट का जो नया जजमैन्ट आया है, उसे देखा होगा। अखबार का पूरा पेज आपके लिए ले आया हूँ। एक बात मान गया—सामन्ती समाज है हमारा, इस पर विलायत वालों ने लाद दिया अंग्रेजी, बूरोक्रेसी, रंगरेजी डीमोक्रेसी।

किशोर : हूँ। मुझे जाना है।

काली : जाना है तो जाइए। मगर जायेंगे कहाँ? अरे साहब, हम आपसे काम लेते हैं या नहीं, आपो हमसे काहे

नाही काम लेते? हमें पराया समझते हैं—नहीं, मैं और आप दोनों एक ही हैं। मगर—हम अलग-अलग हैं। आप लोग पढ़े हो, हम बेपढ़े हैं—दोनों में झगड़ा लगाया है—डीमोक्रेसी ने। सुनिए एक मजेदार बात—चीफ मिनिस्टर से उनके बेडरूम में ही मुलाकात हुई। काफी अच्छे मूड में थे। अपने कमिश्नर साहब पांडे जी भी बाहर अतिथि कच्छ में बैइठे इंतजार कर रहे थे। मुखमन्त्रीजी बोले—कहो, के०पी०, क्या हाल-चाल हैं?·····सब कृपा है, सरकार!·····मुस्कराते हुए बोले मुखमन्त्रीजी—जहाँ कारतूस की चर्बी ने अठारह सौ सत्तावन में अंग्रेजों की यहाँ से जड़ उखाड़ने वाली लड़ाई छिड़वा दी, वहीं स्वतन्त्र भारत में खुले-आम चर्बी के आयात पर देश को सरम भी नहीं आया।

किशोर : अब आप चुप रहेंगे या नहीं?

काली : हुजूर, मैं भी मजाक कर ही दिया—जहाँ एक जलियाँवाला बाग की गोली से पूरे देश को चोट पहुँचा, वहीं अब रोजमर्रा गोली—फाइरिंग, बम, (कमर की पिस्तौल को मेज पर रखना।) नहला पर दहला मारा। क्यों, हुजूर, ठीक किया न?

किशोर : उठाइए इसे। उठाइए।

काली : कितनी तो पिस्तौलें हैं—देसी, विदेसी, अब कहाँ तक लाइसेंस बनवाऊँ। सब आप ही तो लोगों की दया है। हमारी लाचारी ऐसी है, साहब, कि हमें कई रखनी पड़ती हैं—पिस्तौल, बन्दूक ही

नहीं, लेडीज आलसो·····नो नो नो, लेडीज नहीं, वाइफ। वाइफ का बहुवचन क्या है, सर ?

किशोर : चपरासी !

(आकर खड़ा है।)

काली : अपन तो, सर, बहुवचन को भी एक ही वचन मानते हैं। ऐसा है कि वह जो·····वह जो है—भला नाम है—क्या नाम है ? हाँ, मिस चन्द्रा, उसने जो एफ०आई०आर०·····।

किशोर : देखिए, मेरा वक्त बर्बाद मत कीजिए।

काली : वही तो अर्ज कर रहा था—कई-कई रखनी पड़ती हैं—किसकी जरूरत कहाँ पड़ जाए। जहाँ काम आवै सुई, का करिहै तलवार। ऐसा है कि, हुजूर, पहले अंगरक्षक—बोडीगाड रखा था, जब से यह तीसरी बार एम०एल०ए० हुआ हूँ, क्या कहते हैं, उसे, 'सैडो' रखना पड़ता है। जी हुजूर।

किशोर : यहाँ से जाते हैं या नहीं ?

काली : कौन है ? (इधर-उधर देखना।) कौन है, सर ? किसको बार-बार जाने को कह रहे हैं ?

किशोर : यू गेट आउट !

काली : ओ हो तो इसमें इतनी परीशानी की क्या बात है (उठकर) अपना घर है, आना-जाना तो होता ही है।

किशोर : यह घर नहीं, कोर्ट है।

काली : कचहरी कहो, कोरट कहो, इजलास कहो। है सब दफ्तर, सब हैं दफ्तरी। (जाते-जाते) सर, वह

मोहनदास वाला मामला। वे अपने ही लोग हैं, हुजूर। बहुत अच्छे लोग हैं। उनसे कभी कोई असन्तुष्ट होकर नहीं गया। उलझने से कोई फायदा नहीं है जी !

किशोर : आप यहाँ से जाते हैं या नहीं ?

काली : पढ़े-लिखे लोगों की यही बुरी आदत है—जल्द-बाजी करते हैं। अरे आये हैं तो जायेंगे ही। मगर जनाब, अभी-अभी तो आये हैं, अब जायेंगे तो जायेंगे। जाना तो है ही। अंग्रेज आये थे, चले गये। मगर अपनी खुशी से गए। अंग्रेजों की तरह हम न किसी के बुलाने से आये, न किसी के कहने से जायेंगे। बात साफ है न ?

किशोर : यही आप जनता के प्रतिनिधि हैं ?

काली : यहीं तो आप चूक गये हैं। मैं जनता का प्रतिनिधि नहीं, जनता हमारी प्रतिनिधि है।

किशोर : आप क्या हैं ?

काली : आप क्या हैं ?·····मैं बताऊँ—आप अंग्रेज की दुम हैं—मैं उस दुम का बाल।

किशोर : चपरासी।

काली : चलिए, साथ-साथ बाहर चलें। लेकिन यही एक साथ होना, यही नहीं हो सकता। यही है सारे खेल का रहस्य। अच्छा, बहुत समय लिया, ये दोनों कागज पढ़ लेना, हुजूर, समझने का ही फेर है—आदमी मैं आपका ही हूँ—जैसे आप मेरे हैं, सरकार·····(जाते-जाते वापिस।) बेवजह काँटों

से, झाड़ियों से उलझेंगे, तो क्या होगा, कपड़े फटेंगे। जै हिन्द !

किशोर : ब्लैक मेल !

काली : सफेद से ब्लैक का मेल—यही न, साहब ?

किशोर : जाते हैं या नहीं ?

काली : जैसा हुकुम सरकार……। अच्छा किया……आप में हिम्मत है, मैंने चीफ मिनिस्टर से आपकी तारीफ की……क्या कहते हैं……तारीफ के पुल बाँध दिए। बिल्कुल ठीक, इन पूँजीपतियों को तो……। अच्छा किया। और करें मिलावट, काला बाजारी, और करें ब्लैकमेल, बेइमानी, टैक्स चोरी, और खरीदें एम०एल०ए०, एम०पी०, मिनिस्टर, चीफ……। परन्तु सर, हुजूर, एक बार मोहनदास को माफ कर दीजिए—ओनली वन्स मोर, सर।

किशोर : चपरासी !

(चमन का आना)

किशोर : बाहर ! बाहर करो !

काली : अरे बेटे, इधर आ इधर ! नमस्ते कर नमस्ते। बोल, जै हिन्द !

(जाना। प्रकाश जब फिर उभरता है, किशोर अपने बंगले पर। सुबह के अखबार पढ़ रहे हैं। अरुना कई अखबार लेकर आती है।)

अरुना : आज सारे अखबारों में छपा है। देखिए न।

किशोर : हूँ।

अरुना : यह देखिए।

किशोर : हूँ।

अरुना : (पढ़ना) इसमें काफी तारीफ़ है। पूरे दो कालम का एडीटोरियल। ज़िलाधीश का अभूतपूर्व साहस ! राजनेता, अपराधी और काले धन वाले उद्योग-पति……।

किशोर : अपना समाचार पढ़िए। श्रीमती अरुना, महिला मनोरंजन क्लब का आज संध्या चार बजे उद्-घाटन करेंगी।

अरुना : ज़िलाधीश की धर्मपत्नी……।

(फोन)

किशोर : हाँ, कौन है ? हूँ……यस……नहीं। किसी का फोन अभी मेरे पास नहीं आना चाहिए।

(फोन रखना)

किशोर : दरवाजा भीतर से बन्द कर लीजिए।

अरुना : घर के दरवाज़े भीतर से बन्द नहीं किए जाते।

किशोर : मुझे कुछ ज़रूरी……।

(अरुना का जाना। फोन।)

किशोर : कौन ?……क्या ? कौन ?नरेश……नरेश कौन ? ……हाँ, हाँ, दे दो……कौन ? (सहसा) ओ नरेश यू ! वंडरफुल।

(जाकर ले आना।)

नरेश : वाह भाई, ये नक्शे हैं ! सारे अखबारों में तुम।

किशोर : यू आर ग्रेट, मुझे भूले नहीं।

नरेश : अरे भूलने का अधिकार तेरे पास……। क्या ?धीरे

बोलूँ ? तुझे आप कहूँ, सर, जी हुजूर, माई-बाप ..... मैं चला ?

(रोकना ।)

किशोर : नहीं, ऐसा कुछ नहीं ।

नरेश : देखो यार, मैं तुमसे मिलने आया हूँ—तुम्हारी कुर्सी से नहीं ।

किशोर : मैं और मेरी कुर्सी इन दोनों में.....यह तुम्हें कैसे पता ?

नरेश : वरना अखबार में तुम इस तरह क्यों छपते ?

किशोर : अच्छा यह बताओ, तुम कहाँ हो ?

नरेश : तुम्हारे सामने । क्या यह सच नहीं ?

किशोर : क्या करते हो ?

नरेश : जो चाहता हूँ वही ।

किशोर : नरेश यार !

नरेश : बेटा, तुम्हें काम करना पड़ता है, मैं काम करता हूँ ।

किशोर : वही फीलांसिन्ग.....आवारागर्दी ।

नरेश : भाभी कहाँ हैं ?

किशोर : शोर नहीं । दो मिनट, यार । तेरी इस जिन्दगी का प्राइस कौन पे करता है ?

नरेश : दूसरे लोग ।

किशोर : मैं खुद अपना पेमेंट करता हूँ ।

किशोर : बैठो ।

नरेश : नहीं, खड़े खड़े ।

(हँसना ।)

किशोर : बताओ न, कहाँ हो ?

नरेश : क्या बताऊँ, कहाँ हूँ ?

किशोर : यार, मज़ाक नहीं ।

नरेश : मज़ाक के अलावा अपनी ज़िन्दगी में तो और कुछ है नहीं । हाँ, तुम्हारे बड़े चर्चे हैं । खबरें छप रही हैं अखबारों में । थैंक्स फार योर स्कैंडल, वरना तेरा पता-ठिकाना मुझे कहाँ से मिलता । (अखबार निकालकर) डी० एम० ज़िलाधीश किशोर सिन्हा.....न जाने कितने होंगे किशोर सिन्हा..... के० सिन्हा, मगर जब पढ़ने को मिला—कानपुर निवासी.....सेंविटी-सिक्स बैच के आई०ए० एस०.....फिर मैंने हिसाब जोड़ना शुरू किया, हो न हो वही है गुरु घंटाल । (अंक में बाँध लेना ।) ये बताओ बेटा, भाभी किधर है,? उसकी खुशबू तो आ रही है ।

किशोर : अबे, चुप भी रह ।

नरेश : ये हुई न बात अब । अब संवाद चलेगा । कम्यूनिकेशन.....!

किशोर : क्या करते हो ? कहाँ हो ? कैसे हो ?

नरेश : बताया न, जो चाहता हूँ वही करता हूँ । जहाँ होने की इच्छा होती है वहीं होता हूँ । जैसा हूँ वैसा ही रहता हूँ ।

किशोर : शाबाश, पान के बादशाह !

नरेश : बादशाह नहीं, इक्का !

किशोर : इक्का ?

नरेश : वह रीना याद है ? भूल गए, बेटा ? रीना के लिए जो गीत लिखा था, गीत सुनाऊँ……।

(किशोर मंत्रमुग्ध-सा खड़ा है। नरेश गीत सुना रहा है।)

ओ मेरे मीत !
यह जो मुझमें तुम्हें अपने को
न समझ पाने की नादानी है
उसे रोको नहीं, होने दो।
मेरे हर बावलेपन पर
कभी नाराज़ हो, कभी हँसकर
मुझे बेसुध कर देती हो
उस सुख को मैं छोड़ूँ क्यों ?
ओ मेरे मीत……।

नरेश : अरे……रे……अरे……रे !

किशोर : यार……।

नरेश : तुम रोज़ उसे गीत लिखकर भेजते थे।

किशोर : वह नित्य ताज़े पुष्प भेजती थी।

नरेश : गुरु, मैं ही मध्यस्थ था। सारी लड़कियाँ मुझे झट भाई बना लेती थीं। शक्ल ही ऐसी है।

किशोर : तुम जैसा विश्वासपात्र……नेक……।

नरेश : चापलूस !

किशोर : यार, वे भी क्या दिन थे ! बी० ए० फर्स्ट इअर से सेकंड इअर में……।

नरेश : तेरी आँख उससे लड़ी थी। इंगलिश डिपार्टमैन्ट के

पीछे आम के पेड़ के नीचे खड़े-खड़े उस घड़ी का इंतज़ार, जब वह उधर से निकलकर……।

किशोर : लाइब्रेरी के सामने वाले लान में……।

नरेश : लान नहीं, घास पर, बेटे !

किशोर : हम घंटों बैठकर……।

नरेश : (गा पड़ता है) वे फ़ुर्सत के दिन……। 'ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्ल से गुज़री, हम भी क्या याद करेंगे कि खुदा रखते थे।'

किशोर : 'न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता।
डुबोया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता ?'

नरेश : यार, तेरा 'मैं' बड़ा स्ट्रांग था।

किशोर : 'हुई मुद्दत कि ग़ालिब मर गया, पर याद आता है, वह हर एक बात पर कहना, कि यूँ होता तो क्या होता ?'

नरेश : अबे शायरुद्दीन, कुछ चाय-वाय पिलायेगा कि……।

किशोर : चुप। ……रीना कहाँ है ? कभी उससे फिर भेंट हुई ? यार, ऐसे क्यों देख रहा है ? क्या हुआ ?

नरेश : जस्ट फारगेट, यार !

(टेप रिकार्डर दबा देना, संगीत उभरना। किशोर का बन्द कर देना।)

किशोर : नरेश !

नरेश : तुम एम० ए० फर्स्ट क्लास होकर आई० ए० एस०

के कंपटीशन में बैठ कर आ गए, रीना तुम्हारा इन्तज़ार करती रही। क्या बताऊँ कितने 'प्राब्लम' आए। रीना···। रीना मेरे साथ रही।

किशोर : ओह·····वंडरफुल····· रीना और तुम···।

नरेश : हाँ, साथ रहे हम। किसी बन्धन में उसे नहीं बाँधा। संबंध का ही बंधन क्या काफी नहीं है? वह तेरी थी न।

किशोर : वह कहाँ है?

नरेश : क्या पता?

किशोर : तुझे भी कोई पता नहीं?

नरेश : मुझसे क्या मतलब, यार! उसने जब तक चाहा, मेरे साथ रही। जाने के बाद जब कोई अता-पता नहीं दिया, तो मान न मान मैं तेरा मेहमान, क्यों? भूलना जब तेरा अधिकार है तो उसका इस्तेमाल वह मेरे लिए भी तो कर सकती है।

किशोर : मेरे लिए नहीं?

नरेश : अरे अब पछताता क्यों है? अब भी समय है—ईश्वर ने हम सबको मिट्टी का एक प्याला दिया। हम अपने उसी पात्र से अपने जीवन को पीते हैं।

किशोर : तुम्हारी आस्तिकता। काश·····।

नरेश : तुम आजकल·····।

किशोर : वह मुझे याद करती रही? तुमने मुझे क्यों नहीं लिखा?

नरेश : जो यह कहता है—मैं तुमसे प्यार करता हूँ—

इसका मतलब यह है कि तुम मुझे प्यार करो, यह मेरी ज़रूरत है। बस, जब तक उसकी इच्छा हुई मेरे साथ रहो। पूरे ढाई साल तीन दिन, आधा घंटा·····। पूरे समय का इसलिए अहसास है, कि वह हमेशा हर वक्त तुम्हें याद करती थी·····।

(खामोशी।)

(अरुना का आना।)

अरुना : मैं आ सकती हूँ?

नरेश : भाभी जी, नमस्ते·····नरेश।

किशोर : अरुना·····यह·····यह·····।

(संगीत चला देना। संगीत का छा जाना। अंधेरा। अंधेरे में संगीत। शोरभरा पॉप संगीत। प्रकाश आने पर किशोर सोफे पर लेटा है। ट्राली ट्रे पर ड्रिंक्स का सारा सामान लिए चमन आता है। ड्रिंक्स बनाकर साहब को देता है। एक ही घूंट में पूरा पी लेना। बजर बजता है। चमन दौड़ता है। लौटता है।)

चमन : मिसेज़ नांगलोई।

किशोर : आने दो। ·····वेलकम, मिसेज़ रीता नांगलोई!

रीता : हाय!

किशोर : हैलो!

रीता : हाय, क्या म्यूज़िक! (देखकर) ओ 'हिट एट्रो थ्री'! (झूम जाना।) यह क्या पी रहे हैं?

किशोर : ओल्ड मॉक ओन द राक।

रीता : ओ ! यू आर ग्रेट ! दी रिअल ही-मैन !

किशोर : रुकिए, म्यूज़िक का शोर·····।

रीता : ओह् नो ! आई लव शोर ।

(रीता कैसेट टेप, एल० पी० रिकार्ड्स देखने लगी है। किशोर सोच रहा है।)

किशोर : हालो मैन ! पॉप लाइफ ! इतना शोर ! सारी सेन्सटिविटी कुंद हो जाए। कोमलता पत्थर हो जाए। आदमी का शायर मर जाये। कविता खो जाए। अहसास घिस कर, शोर की गुफा में छिप कर सिर्फ वही एक चीज़।

रीता : (सहसा) ओऊ ! हाय ! 'केब म्यूज़िक' ?

किशोर : आपको पसन्द है ?

रीता : ओ आई लव, सोसाइटी फार ओपेन माइंड ।

किशोर : ओपेन माइंड ? ओपेन सोसाइटी ?

रीता : क्यों नहीं ? ·····लोग काम और सैक्स के बारे में कम्पलीटली कन्फ्यूज्ड हैं। तभी तो सारी लाइफ के बारे में इतना 'कन्फ्यूज़न' है। ज़रा-सी बात पर गुस्सा, रूठ जाना, 'मूड आफ', 'वायलेंस'—ये सब बन्द दिमाग और हिपोक्रेसी का नतीजा है।

किशोर : फिलासफी आफ कनवीनियन्स·····

(हँसना)

रीता : देखिए न, जब आदमी हँसता है तो कितना अच्छा लगता है।

किशोर : और जब रोता है ? गुस्सा करता है ? बेइंसाफी के खिलाफ लड़ता है ?

रीता : 'जैहिन्द' पिक्चर हाल में एक उम्दा पिक्चर लगी हुई है।

किशोर : ओफ !

(बढ़कर संगीत बन्द कर देना।)

किशोर : इस मुल्क में मैडम या तो सनीमा है, या पालिटिक्स, बल्कि दोनों एक ही चीज़ हैं और हम मूक बधिर दर्शक हैं।

रीता : मूक ? बधिर ? 'व्हाटिज़ दिस' ? बाबा, मैं यह हिन्दी नहीं जानती।

किशोर : आप क्या जानती हैं ?

रीता : लाइफ ! टु लिव लाइफ !

किशोर : किसकी लाइफ ?

रीता : अपनी।

किशोर : आप क्या हैं ?

रीता : ये फूल बड़े सुन्दर हैं ?

(सजाने लगना)

किशोर : जब तक अपने से प्रेम नहीं है, दूसरे से प्रेम नहीं कर सकते। अपने से तब तक प्रेम नहीं कर सकते, जब तक अपने-आपको जाना नहीं कि मैं कौन हूँ ?

रीता : किताबी बातें मत किया कीजिए प्लीज़ ! लाइफ की बात क्यों नहीं करते ?

किशोर : अरुना। अरु ! ओह, बाहर गयी हैं।

रीता : कुछ चाहिए ?

किशोर : बस, यही एक सवाल रह गया।

रीता : आप बहुत डिस्टर्ब्ड हैं।

किशोर : मेरी बुनियाद में किताबें हैं—वे भी अंग्रेज़ों की—लास्की, ब्रेडले, रूसो, एडम स्मिथ, मार्क्स, बर्टेल रसेल·····मेरा अनुभव प्रत्यक्ष जीवन का नहीं है। जीवन बिल्कुल कुछ और है। मेरे लिए सब कुछ दो में बँटा है—शरीर—आत्मा, सैक्स—काम, नौकरी—आज़ादी, गुलामी—स्वतंत्रता, प्रेम—कैरियर, थाट—एक्शन।

रीता : हाऊ ब्रिलियन्ट यू आर!

(रीता को कसकर प्यार करना चाहा, पर नहीं कर सका।)

रीता : कम आन·····आपका 'प्राब्लम' क्या है, सर?

किशोर : जानता हूँ पर विश्वास नहीं।

रीता : कम आन·····लीजिए न।

—एक पैग देना।—

किशोर : 'यस—नो', हाँ—नहीं में इस कदर बँटा हूं·····।

(पकड़े हुए देखते रह जाना।)

रीता : मिसेज़ कहाँ हैं?

किशोर : उद्घाटन करने गयी हैं।·····बैठिए।

रीता : ओ नो! मुझे बैठने से सख्त नफरत है।

किशोर : एक·····छोटा-सा?

रीता : थैंक्यू वेरी मच·····आज 'टियूज़डे' है।

किशोर : मंगल तो हनुमान जी का दिन है। माडर्न स्त्री और हनुमान जी·····?

रीता : ओ नाट हनुमान·····हन् मैन! एक अमेरिकन मैगज़ीन में पढ़ा है—'टियूज़डे' को सूरज की किरनों में फासफोरस का एलिमैन्ट बहुत बढ़ जाता है। इस दिन फास्ट करने से·····यू नो·····फास्ट से·····फासफोरस बाडी के लिए बहुत जरूरी है। बाडी···यू नो

(अरुना का आना। हाथ में फूलों का गुलदस्ता।)

अरुना : हैलो!

रीता : हे!

किशोर : आप लोग यहाँ·····मैं उधर·····।

अरुना : ओ नो!

(किशोर का अलग जाकर बैठना। ये दोनों परस्पर।)

रीता : वाह बड़े मैचिंग कलर्स हैं!

अरुना : थैंक्यू!

रीता : मेरी यह अंगूठी देखी—कनाडा से मेरे भाई ने भेजी है। यह ऐसा नगीना है, जो हर वक्त रंग बदलता रहता है। देखिए न, आपके सामने·····मेरे सामने, दीवार, लाइट·····रंग बदलता रहेगा।

अरुना : हाऊ फनी!

रीता : आपका वज़न कितना चल रहा है?

अरुना : मैंने 'सोना हेल्थ क्लब' ज्वाइन कर लिया है।

रीता : मैं रेगुलर मैसाज करवाती हूँ।

अरुना : आप फंक्शन में क्यों नहीं आयीं ?

रीता : मुझे लेडीज़ की भीड़ में जाना अच्छा नहीं लगता।

अरुना : बड़ी खास 'गैदरिंग' थी।

रीता : वे टुअर पर गये हैं।

अरुना : ये घर से निकलना नहीं चाहते।

रीता : काफी डिस्टर्ब्ड हैं।

अरुना : सब ठीक हो जाएगा।

रीता : आपने लैक्चर दिया होगा।

अरुना : फंक्शन में आतीं—सारे लोग आए थे।

रीता : जहाँ सारे लोग होते हैं,वहाँ मैं 'एबसैन्ट' रहती हूँ।

अरुना : बैठिए न, मैं अभी आयी।

(जाना।)

रीता : आपको हमारी कंपनी अच्छी नहीं लगती ? आप कुछ सोच रहे हैं ? यह जगह बड़ी स्कैन्डलस हो गयी है। यह सब पर्वर्शन का रिज़ल्ट है। मेरे हसबैण्ड कह रहे थे यह सारा कुछ उसी काली प्रसाद की प्लानिंग है, और इस सबके पीछे दिमाग उसी मोहनदास का ही है। ऊपर के लोग भी तो ऐसे हैं—कहीं कोई 'एक्शन' नहीं लेता। सब अपनी चमड़ी बचाते हैं। अफसर की भी क्या ज़िन्दगी है—अपने ऊपर वालों से डरना, अपने नीचे वालों से काम लेना·····काम कोई करना नहीं चाहता·····यू नो।

(अरुना का कपड़े बदलकर आना।)

रीता : हे, किलिंग !

अरुना : अब उठो न, डिनर तैयार है।

रीता : ओह, मिस्टर नांगलोई भी आ गए होंगे।

अरुना : उन्हें भी बुला लेते हैं।

रीता : ओ, आज मेरा 'फास्ट डे' है।

अरुना : लेज़ दिन है, फिर तो क्या कहने।

रीता : आप कौन-सा शैम्पू इस्तेमाल करती हैं ?

अरुना : इनके कोई दोस्त इंगलैंड से ले आये हैं। आइए बैठिए न। अभी तो मुश्किल से साढ़े आठ बजे हैं।

रीता : नो नो। डिनर से पहले हम दोनों योड़ा योगा करते हैं।

अरुना : यह क्या चीज़ है ?

रीता : ओह, यू डोन्ट नो।·····हे बाई !

(जाना। डिनर टेबल पर चमन द्वारा डिनर की तैयारी।)

अरुना : आइए, डिनर !

किशोर : बर्फ चाहिए मुझे।

अरुना : चमन ! बर्फ !

चमन : जी हुजूर।

अरुना : डिनर से पहले स्नान करेंगे ?

(किशोर चुप। चमन फ्लास्क ट्रे में बर्फ रखकर चला जाता है।)

किशोर : आज कुछ भी खाने की इच्छा नहीं है।

अरुना : हो सकता है आज रात किसी समय भी पिताजी आ जायें। (खामोशी।) उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता करने शिक्षामंत्री की पत्नी आयी थीं। हमारी ही यूनिवर्सिटी की पढ़ी हुई हैं। मेरे उद्घाटन भाषण की सभी ने तारीफ की। कमिश्नर साहब की साली भी आयी थीं। और भी कई लोग आये थे। अध्यक्षा ने कहा—हम सरकारी लोग हैं, कोई हमारा अहित नहीं कर सकता। काफी इन्तज़ाम था 'ऐट होम' में। काली प्रसाद की बुराई सभी कर रहे थे। सबको पता है असलियत क्या है। इसमें चिन्ता करने की ऐसी क्या बात है? बस कीजिए। डिनर में देरी हो जाएगी। सुबह सिर में दर्द हो जाएगा। मेरी यह साड़ी कैसी लगती है?

किशोर : आज हम यहीं नीचे फर्श पर खाना खायेंगे।

अरुना : कोई देखेगा तो क्या कहेगा।

किशोर : अरु, आज वही गाना सुनाओ, जो इंगेजमेन्ट पर··· ··सुनाओ। संगीत प्रभाकर में तुम्हें फर्स्ट क्लास फर्स्ट मिला था। शास्त्रीय संगीत के 'फिफ्थ इअर' में तुम्हें भारतखण्डे गोल्ड-मेडल मिला था। कविता और संगीत—यही दोनों चीज़ें मुझे·····। तुम्हीं से—सिर्फ तुम्हीं से प्रभावित होकर पिता जी ने·····।

अरुना : कितनी बार तो कहा—कोई अच्छा-सा संगीत टीचर···तुम्हारे पास वक्त ही नहीं है। कब से तानपूरा टूटा पड़ा है, तुम्हें फुर्सत ही नहीं मिलती।

(किशोर की तेज हँसी, फिर एकाएक गम्भीर हो जाना।)

किशोर : जैसे हम लोगों की सारी पढ़ाई, नौकरी के लिए वैसे तुम लोगों का सारा गाना-नाचना शादी के जाल में हम उल्लुओं को फँसाना·····अरु, कभी किसी से प्यार किया है?

अरुना : व्हाट नॉनसेन्स!

किशोर : प्यार नॉनसेन्स है?

अरुना : डिनर में देरी हो रही है।

किशोर : प्यार किसी इन्सान से न सही, तुम औरतों का मामला ही ऐसा है, खैर। प्यार किसी चीज़ के लिए—संगीत, नृत्य, बागवानी, 'चाइल्ड केयर', सफाई, सजावट, कोई प्यार, कहीं भी?

अरुना : घर-गृहस्थी, तुम्हें संभालना—देखना, कोई कम काम है!

किशोर : काम नहीं, प्यार के बारे में पूछ रहा हूँ।

अरुना : (सहसा) पिताजी आ गए।·····

(जाना। किशोर का बढ़कर संगीत चला देना। संगीत। अंधेरा। प्रकाश लौटने पर—किशोर नाइट गाउन में वहीं खड़ा है। चारों ओर अंधेरा।)

किशोर : अजीबोगरीब है आदमी की जाति। जो मर जाते हैं, उनकी बातें सुनकर लोग खुश होते हैं, जो ज़िन्दा होते हैं, उन्हें मार डालने की तमाम साजिशें, तरह-तरह की धमकी।·····कैसी दुनिया में आ पहुँचा हूँ, जहाँ कुछ भी साफ-साफ नहीं

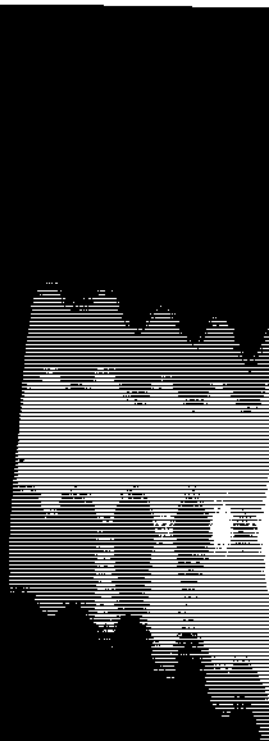

बोला जा सकता। अपनी सूझबूझ, अपने दिमाग से जहाँ कोई काम नहीं किया जा सकता। अपने ढंग से अपने दायित्व का निर्वाह नहीं, दूसरों के ढंग से। हाथ मेरा·····दिमाग किसी और का। दूसरों की लादी हुई इतनी बंदिशें। योग्यता-अयोग्यता सब बराबर। कुछ रटे-रटाये शब्द, वाक्य, उन्हीं के सहारे काम लेना। मैं क्या हूँ—बस, मेरे नाम पर कुछ' रुटीन' हैं।

(उस अंधेरे में से पिताजी प्रकट होते हैं।)

पिताजी : यह सही है, शिष्टाचार बढ़ता जा रहा है, दिल सिकुड़ता जा रहा है।

किशोर : पिताजी, प्लीज़, अब भूमिका मत बाँधिये। आप ने मुझसे हमेशा सीधी बात की है।

पिताजी : मैं अब भी सीधी बात करता हूँ। तुम्हें टेढ़ी लगती है, इसका कारण है। तुम अपने-आपको दिनों-दिन अकेला, और अकेला मानने के लिए मजबूर होते चले जा रहे हो।

किशोर : जो सच्चाई है, उसमें मजबूरी कैसी ?

पिताजी : सच्चाई नहीं, भ्रम है।

किशोर : भ्रम ?

पिताजी : मार्डनिटी ! आधुनिक ! जो तुम नहीं हो।

किशोर : मैं नहीं हूँ ? मैं क्या हूँ ?

पिताजी : जो इसी प्रश्न से भागता रहा है ? जो अपने 'रूट्स'—मूल से जुड़ने में भयभीत है।

किशोर : क्यों ?

पिताजी : देहासक्ति के कारण, तभी तुम्हारा वर्तमान युवा-विरोधी है—बुढ़ापा बना रहे—सबकी चिन्ता रिटायरमैन्ट के बादकी है—मृत्यु से डरे हुए लोग। घमण्डी, भावुक, सेन्टीमैन्टल !

किशोर : मैंने कम्पटीशन में नहीं बैठना चाहा था, आपने कहा—बेटे, मेरी इज़्ज़त के लिए बैठ जाओ। मैं अभी शादी नहीं करना चाह रहा था, आपने एक सुयोग्य कन्या डिग्रियों और सर्टिफिकेट्स से लैस, मुझे विवाह बन्धन में·····आप हमेशा आदर्शवादी रहे हैं, कुछ जीवन मूल्य रहे हैं, पर आपके चारों ओर की दुनिया ? आपने कहा—बेटे, सच बोलना, सच्चाई का जीवन जीना, आदर्शों से गिरना नहीं। इसका नतीजा क्या निकला ? किसी भी पोस्टिंग में एक साल से ज़्यादा नहीं रह पाया। काम करना शुरू नहीं किया कि ट्रांसफर। एक पोस्टिंग से दूसरी पोस्टिंग। पर चार्ज लेने से पहले ही वहाँ खबरें पहुँच जातो थीं—ईमानदार है, बेवकूफ·····!

पिताजी : ईमानदारी का फल खुद को नहीं मिलता, बेटे। सच्चाई और ईमानदारी की कीमत चुकानी पड़ती है। देखो, मुझे·····सीधे पोस्ट मास्टर हुआ था, वहीं से चुपचाप रिटायर हो गया, आगे कोई तरक्की नहीं। कितनी इन्क्वायरी बैठी मेरे खिलाफ। कितने डिपार्टमैन्टल केस। ईमानदारी का फल दूसरों को मिलता है, बेटे। दरख्त अपना

फल कभी नहीं खाता। पहाड़ से नदी चलती है—पहाड़ को नदी का पानी नहीं मिलता। पानी समुद्र को मिलता है। समुद्र से भाप बनकर बादल। बादल फिर पहाड़ पर·····फिर नदी····· ऐसे ही होता है। सीधे नहीं। सीधा उल्टा नहीं हो सकता। हर चीज़ घूमकर अपने 'रूट्स'—मूल पर पहुँचती है।

किशोर : आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।

पिताजी : आओ, ईश्वर से प्रार्थना करें—और कोई उपाय नहीं है।

किशोर : पिताजी !

पिताजी : डरो नहीं।

किशोर : पिताजी, आप नहीं जानते, मुझ पर क्या-क्या हुआ है।

पिताजी : हे ईश्वर !

किशोर : अंधविश्वास।

पिताजी : विश्वास का संस्कार मिलता है। देखो मुझे, कितना संतोष है—जो मिला, जो नहीं मिला। कोई फर्क नहीं।

किशोर : आपको अपने काम का आत्मसंतोष मिला। हमारी हालत देखिए—एक मुख्यमंत्री ने मेरे सामने कहा—सीधे मुझसे—'काम बेईमानी से होता है, श्रीमान, ईमानदारी से नहीं। ईमानदारी चाटें तुम्हारी !"

पिताजी : सच है, उनका काम बेईमानी से होता होगा।

(इस बीच पिताजी से बात करना। फोन आने से कट कर फोन उठाना-रखना। दूसरा, तीसरा, चौथा फोन, अलग-अलग स्थानों पर रखे फोन को सुनना।)

किशोर : पिताजी, (फोन) मैं हमेशा आपकी ही बात क्यों मानता रहा ? (फोन) जी हाँ, कुछ बातें सनातन होती हैं, लेकिन आदमी मेरा 'मैं' भी कुछ होता है। (फोन) जी पिताजी····।

पिताजी : आदमी कुछ नहीं होता। 'मैं' भ्रम है, अज्ञान है उसका।

किशोर : मैं कुछ नहीं हूँ ? (फोन) मैं अज्ञान हूँ ? जी नहीं मैं हूँ। मैं अब इसे साबित करूँगा। (फोन) हैलो ····· अभी फोन मत दो मुझे। कितनी बार कहा। (रखना) पिताजी····।

पिताजी : बेटे, हर बात में तुम इतने इमोशनल क्यों हो जाते हो ? कोई गहरा अभाव है तुममें। (रुक कर) हाँ, माँ का अभाव। इसी अभाव को पूरा करने के लिए तुममें इतनी बेचैनी·····।

किशोर : हाँ, हाँ, शायद माँ का अभाव।

पिताजी : हर बात में शायद····· संदेह····· तर्क·····।

किशोर : यहाँ निश्चित कुछ नहीं है।

पिताजी : मोहनदास, मिस चन्द्रा, कालीप्रसाद, तुम सब कुछ निश्चित नहीं है ? नहीं है फिर लड़ाई किस बात की ? 'मॉक फाइट', लड़ाई का ड्रामा·····। प्यार स्नेह, आदर, क्रोध, सब फिल्मी। संदेह ही मार्डनिटी है। संदेह, तभी इंसान मशीन हो रहा।

किशोर : संदेह क्यों है ?

पिताजी : संदेह है नहीं, पैदा किया गया—सबूत का तर्क खड़ा कर। ज्ञान है, विज्ञान पैदा किया गया—'मैं' सुपर पावर है—जो चाहे ले सकता है—जो चाहे कर सकता है पर चारों ओर यह हाय-हाय··· धाँय धाँय·····काँय-काँय ! (हँसना) बेटे, जो 'है' उसे कोई सबूत नहीं चाहिए। जो नहीं है उसके लिए सब सबूत बेकार हैं।

किशोर : आप हर वक्त फिलासफी में चले जाते हैं। मैं ठोस यथार्थ जमीन पर खड़ा·····।

पिताजी : ठोस, यथार्थ····· ऐसा कुछ नहीं है, बेटे। बस, अपने आप को देखो, इतना ही काफी है। सारी दुनिया तुम्हारे मुताबिक चले, यह भ्रम—अहंकार छोड़ दो।

किशोर : मैं·····मैं·····।

पिताजी : कोई 'मैं' तुम्हारे अधिकार में नहीं।

किशोर : मैं आपके अधिकार में नहीं हूँ ?

पिताजी : ऐसा भ्रम मुझे नहीं है।

किशोर : मैंने आपकी बातें नहीं मानीं ?

पिताजी : वह मानना नहीं, मजबूरी थी। (रुक कर) जिसके बारे में कोई स्वयं फैसला न ले सके, वह काम उसे नहीं करना चाहिए। (रुक कर) तुम कर भी क्या सकते थे ? होस्टल में रहकर सारी पढ़ाई की। तुम्हारी दुनिया सिर्फ किताबी दुनिया थी—लास्की, एडम स्मिथ, प्लेटो, मार्क्स, आक्सफोर्ड

डिक्शनरी·····। आइडिया ही तुम्हारी रिएलिटी थी। नौकरी के अलावा और क्या कर सकते थे। एम०ए०, फिर आई०ए०एस०। इससे बढ़कर नौकरी और क्या हो सकती है ? अंग्रेजी हुकूमत से हमारी लड़ाई की बुनियाद नौकरी ही थी। सो आज़ादी के नाम पर अंग्रेज़ हमें अपना नौकर बनाकर चला गया। नौकरी राजनीति है, राजनीति नौकरी है—ऊपर से डरो, नीचे डराकर रखो। (रुक कर) तुमने पहली बार कुछकर गुजरने का स्वयं फैसला लिया, बधाई·····मन्नू ! मन्नू नहीं, मन्यू !

किशोर : जिसके बारे में में स्वयं कोई फैसला न ले सकूँ, वह काम मुझे नहीं करना चाहिए ?

पिताजी : खबरदार, अब मेरा कहना नहीं, खुद···स्वयं अपना·····।

किशोर : अपना क्या है ?

पिताजी : यही देखना-जानना है।

किशोर : देखने-जानने से पहले आप लोग इतना कुछ बता देते हैं कि कोल्हू के बैल की तरह उसी एक घेरे में चक्कर लगाने के सिवा और कुछ नहीं रह जाता।

पिताजी : आवेश में आकर देखना चाहते हो ?

किशोर : मैं कुल सात साल का था जब माँ नहीं रहीं, आप तीस साल के थे तब। मुझे झूठ, गन्दगी, अन्याय, बदतमाज़ी बिल्कुल बर्दाश्त नहीं। रोज़ मारपीट

लड़ाई करके घर आता था। एक दिन आपने कहा था—बेटे! यह लड़ाई-झगड़ा करने की आदत छोड़ दो, नहीं तो दुनिया कहेगी—बिना माँ का बिगड़ गया। उस दिन से मैं……। आज मुझ पर यह आरोप लगाया जा रहा है कि मैंने मिस चन्द्रा के साथ……। मुझ पर उस जगह चोट की जा रही है, जो मेरे बर्दाश्त के बाहर है।

पिताजी : जब बर्दाश्त के बाहर है तो लड़ोगे क्या ? लड़ाई है, तो लड़ाई है। अब यही देखने की बात है, कौन किससे लड़ रहा है, लड़ाई कहाँ है ? शत्रु कौन है ? लड़ने के साधन क्या हैं ? समझ लो वक्त बिल्कुल नहीं है। संकटकाल है—ज़िन्दगी का हर क्षण 'क्राइसिस' है। पहले ध्यान से देख-समझ लो, फिर 'एक्शन' में उतरो।

किशोर : देखना क्या है ?

पिताजी : अपने-आपको।

किशोर : देखा है।

पिताजी : नहीं देखा है, नहीं तो एक झूठे प्रहार से तुम्हें इतनी चोट नहीं लगती। बलात्कार नहीं किया, पर आरोप की चोट क्यों लग गयी ? देखो यह क्या है ? तुमने अपने आपको नहीं देखा, हाँ, इतनी भाग-दौड़ में अपने-आपको कौन देखे, समय ही कहाँ है, देखते हैं अपने 'पावर' को—पावर इन्स्टीच्यूशनलाइज्ड इज़ आथॉरिटी। आई०ए०एस० इक्ज़ीक्यूटिव पावर इज़ आथॉरिटी,। लेकिन

पावर है क्या ? व्हाटिज़ पावर ? पावर जुड़ा है डिफीट से, पावर माने पावरलैस ! पावर माने गुलामी—परतन्त्रता ! अब तक क्या देखा ? देखा ही नहीं ?

किशोर : पिताजी।……

पिताजी : जब तक कोई भी इच्छा, वासना शेष है तब तक गुलामी है। पर देखो, इच्छा वासना ही जीवन है। जीवन माने बंधन 'क्राइसिस'। कहीं नहीं है फ्रीडम—केवल पावर है पावर—शक्ति, सत्ता—जो इस जेलखाने को कबूल कर, देखकर हर वक्त सावधानी, सूझबूझ से चलेगा, जियेगा वही……वही……

किशोर : बकवास ! बकवास ! बकवास !!

पिताजी : देख लो अब।

किशोर : किसे फुर्सत है इन बातों के लिए ?

पिताजी : बिना कुछ जाने समझे क्या करोगे ?

किशोर : लड़ूँगा—अपनी ईमानदारी से।

पिताजी : ज़िन्दगी सिर्फ ईमानदारी नहीं है।

किशोर : तो क्या मैं लड़ूँ नहीं ? भाग जाऊँ ? नौकरी से त्यागपत्र दे दूँ ? सब कबूल कर लूँ ?

पिताजी : बिना इमोशनल हुए पूरी सूझबूझ के साथ।

किशोर : पिताजी, आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।

पिताजी : यहाँ किसी पिता की बात किसी पुत्र की समझ में नहीं आती—आ नहीं सकती—'दिस इज़ कलोनियल रिएलिटी !'

किशोर : ओफ़, आप कहाँ से कहाँ चले जाते हैं !

पिताजी : पूरी समूची चीज़ देखे बिना डाक्टर आपरेशन नहीं करता। (रुककर) बेटे, समझो। चारों ओर से दुश्मनों से घिरे हो केवल तुम्हीं नहीं, हर प्राणी, और किसी के पास अवसर नहीं है, हाँ, नहीं है—न भागने का, न इमोशनल होने का—सिर्फ देखना है, लड़ना है—और जीतना है।
(जाने लगना।)

किशोर : पिताजी·····

पिताजी : लड़ाई यहाँ है, (सिर छूना) यहाँ नहीं (दिल छूना), यहाँ खुद फैसला कर लो। एक्शन नहीं, कर्म, जिसके कर्ता हो तुम। आल द बैस्ट ! (थम्स अप) शाबाश।

(पिता जी का जाना। रोशनी केवल किशोर पर।)

किशोर : खास तौर पर मुझे यहाँ भेजा गया 'ला आर्डर' यहाँ था ही नहीं—जहाँ देखो वहाँ क्राइम्स, अंधेर खाता, लूटमार, अन्याय। मैंने अपनी समझ मुताबिक यह जाना है, सारे अपराध की जड़ में जुआ है—गैम्बलिंग। सबसे बड़े जुआ अखाड़े पर मैंने छापा डलवाया·····।

(अंधेरे में एक चेहरा उगता है।)

एक : ओ हो हो·····अब आप आए हैं मिस्टर आनेस्ट वीर बहादुर ! आपका ख्याल बिल्कुल दुरुस्त है, सारे क्राइम्स की बुनियाद में गैम्बलिंग है—काफी समझदार हो, मगर समझदार आदमी नहीं हो।

अरे उल्लू की दुम, यह क्यों नहीं सोचा कि जुआ की बुनियाद में क्या है ? जो हारा है, वह हार कबूल करना नहीं चाहता—हा हा हा ! तुम्हारा क्या ख्याल है, आजकल एक एम०एल०ए० के एलेक्शन में कितना खर्च होता है—एक लाख, दो लाख, चलो मान लेते हैं दो लाख, वैसे तुम्हारा हिसाब-किताब निहायत कमज़ोर है। ये दो लाख कौन लगाता है, और किस पर लगाता है ? जो लगाता है वही दरअसल जुआ खेलता है। जिस उम्मीद पर लगाता है, उसकी सारी नब्ज़ अपने हाथ में होती है—इसलिए उम्मीदवार का मोहरा वही बनाया जाता है, जो निहायत बुज़-दिल, बिकाऊ और कौड़ी की तरह·····(चमड़े के पात्र में कौड़ियों की झनझनाहट। शोर के बीच फर्श पर कौड़ियों को गिराना।) मेरी कौड़ी जीत गयी। मेरी कौड़ी एम०एल०ए० हो गयी।

इंकलाब—ज़िन्दाबाद, कालीप्रसाद—ज़िन्दाबाद·····। अरे कालीप्रसाद। नहीं नहीं, कालीप्रसाद जी·····।

काली : नमस्ते।
(पैर छूना।)

एक : देखो, कुल ढाई लाख लगाया है चुनाव में। अब कम-से-कम पाँच लाख, हिसाब की बात है।

काली : रास्ते पर उतारा है तो रास्ता भी बताइये।

एक : (कागज पर) पाँच साल में यहाँ एक जुआखाना, यहां गुप्त चकला·····यहाँ·····शराब की दुकान।

काली : जो आज्ञा ।

एक : यह लीजिए इतना और लगाइए, मंत्रीमंडल में अवश्य आ जाइए·····।

(दोनों का हंसना । डरने-डराने का अभिनय करना ।)

एक : यह किशोर दर्शक है बेचारा ।

काली : अच्छा ।

एक : पूछो उसे क्या चाहिए ?

काली : क्या चाहिए ? पोस्टिंग, ट्रांसफर ? डिपार्टमेन्टल इन्क्वायरी ? ओ·····यहाँ कुछ काम करना चाहता है ? आ जा·····आ·····।

एक : आइए·····कोठी पर डिनर । फैक्ट्री का उद्घाटन·····। फिल्म प्रीमियर में चीफ़ गेस्ट । भारत दर्शन·····फारेन टुअर·····फाइव स्टार होटल में नाइन स्टार्स ।

(किशोर पर प्रकाश सिमटकर बुझ जाता है । जब प्रकाश लौटता है किशोर का आफिस । किशोर, नरेश और काली । किशोर फाइलें पढ़ने, नोटिंग करने में लगे हैं ।)

काली : इस सज्जन को इहाँ से हटाय दीजिए, आपसे कुछ प्राइवेट बात·····हैं जी···जी ।

किशोर : यह यहीं रहेंगे—कहिए ।

काली : आपकी तारीफ़ ? मुझे कालीप्रसाद कहते हैं—एम०एल०ए० सरकारी·····।

नरेश : मेरे कई नाम हैं—नरेश, आदित्य, दीपंकर, शेखर, विवेक, महेश, गौतम वगैरह-वगैरह ।

काली : वाह ! अपना राष्ट्र इतना 'डेवलेप' कर चुका है । (हाथ मिलाते हैं ।) कौन कहता है भारत·····क्या नाम है उसका ? 'अंडरडेवलेप' या 'डेवलपिंग'·····कुछ ऐसा ही है । खैर, आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई । साहब के दोस्त हैं । कहाँ काम करते हैं ? क्या काम-धन्धा है ?

नरेश : कुछ समझा नहीं ।

काली : करते क्या हैं ?

नरेश : कुछ नहीं ।

काली : कमाल है !

नरेश : जब जो जरूरत होती है, कर लेता हूँ । एक्टिंग, फाइटिंग, राइटिंग·····।

काली : टाकिंटिंग एंड टाकिंटिंग ! हाँ तो सर, आपसे कहने आया हूँ कि, देखिए आप दो मिनट के लिए·····।

(नरेश का जाने लगना ।)

किशोर : रुको । हाँ जी, कहिए ।

काली : प्राइवेट को पब्लिक बनाने से भला क्या फायदा ? खैर, अपना तो फर्ज है—खबर देना, खबर लेना । हुजूर, आपको पता ही होगा विगत अट्ठाईस मई को उच्चतम न्यायालयने अपने एक फैसले से बलात्कार कानून की सारी तस्वीर ही बदल दी । अब उसके अनुसार बलात्कार की शिकार महिला के बयान पर शक नहीं किया जा सकेगा । आरोप की पुष्टि के लिए कोई अन्य सबूत की भी जरूरत नहीं ।

नरेश : लेकिन अगर हालात ऐसे हों, जिसमें डाक्टरी सबूत मौजूद है, तब इसके बारे में अवश्य ग़ौर होगा।

काली : देखिए, बीच में मत डिस्टर्ब कीजिए।

नरेश : माफ़ कीजिए, मैं एक डेलीपेपर के प्रतिनिधि की हैसियत से आया हूँ। यह देखिए मेरा कार्ड। मोहनदास का मामला और मिस चन्द्रा का केस —दोनों के बारे में······।

काली : अरे तो यह हुई न बात। आइए बाहर चलें।

(दफ्तर के बाहर आकर)

काली : लीजिए, सिगरेट पीजिए।

नरेश : धन्यवाद, नहीं पीता।

काली : तो क्या पीते हैं ?

नरेश : ग़म।

काली : मज़ाक कीजिए बन्द, क्या नाम है ?

नरेश : अखबार में आदित्य के नाम से लिखता हूँ।

काली : आपको टी०वी० में देखा है।

नरेश : जी हाँ, वहाँ मैं दीपंकर हूँ······।

,**काली** : अरे आप तो बड़े काम की चीज हैं। देखिए शाम को आप हमारी महफिल में रहेंगे, कोई बहाने बाज़ी नहीं चलेगी।

नरेश : जी हाँ, मैं ज़रूर हाज़िर होऊँगा।

काली : कहाँ टिके हैं ?

नरेश : स्टेशन पर—डारमेट्री में—बेड नं० तेरह।

काली : कमाल है ! हद हो गयी। हमारे गेस्ट हाउसेज क्या साधु-सन्त-फकीरों के लिए हैं। आइए, चलिए मेरे साथ······ड्राईवर······मोतीसिंह······।

नरेश : जी नहीं, मैं जहाँ हूँ वहीं रहूँगा। हाँ, शाम को आप जहाँ कहें······पता बताइए।

काली : देखिए लज्जित मत कीजिए। इस नंबर की गाड़ी आपकी सेवा में रहेगी। दिन भर आप शहर में जहाँ जो चाहें कीजिए। यह लिफाफा रख लीजिए। शाम को ड्राईवर खुद······।

नरेश : जी नहीं, मुझे किसी लिफ़ाफे की ज़रूरत नहीं। यहाँ आए तीन दिन हो गए हैं मुझे। अब कहीं भी आना-जाना नहीं है। जहाँ कहें वहीं समय से सीधे हाज़िर हो जाऊँगा।

काली : यह तो कोई बात न हुई ? क्या आप हर चीज में निश्चित हैं ? कहीं कोई डाउट, वगैरह नहीं है ?

नरेश : जी हाँ, कुछ ऐसा ही है।

(सन्नाटा।)

काली : मेरे साथ चलिए न, यहाँ क्या करेंगे बैठकर ?

नरेश : चलिए।

काली : अरे ! मेरा खयाल था, आप ना कर देंगे।

नरेश : कोई बात नहीं। आप शौक से जाइए। शाम को भेंट होगी।

काली : आइए······आज सारे प्रोग्राम कैंसिल······आइए मेरे साथ।

नरेश : साहब को बता आऊँ।

(आकर)

नरेश : घंटाल के साथ जा रहा हूँ।

किशोर : फिर भेंट कब होगी ?

नरेश : जब होगी।

(आकर)

नरेश : चलिए।

काली : आप बड़े नियम-कानून के आदमी हैं।

नरेश : धन्यवाद।

(जाना। अंधेरा। प्रकाश। नरेश और कालीप्रसाद। कालीप्रसाद फोन पर)

काली : हूँ..... हूँ.....ऐसा ही होता है। नहीं, नहीं, आज किसी से भी मिलना संभव नहीं। जी, आज तबीयत ठीक नहीं। बुखार में पड़ा हूँ। (फोन रखना। फिर करना।) हैलो, मम्मी जी, मैं बोल रहा हूँ... ...चन्द्रा कहाँ है ? बुलाइए। (नरेश से) और क्या हालचाल हैं, भाई साहब ?.....हालो चन्द्रा, ठीक ठाक ?.....हाँ, हाँ, अच्छा ऐसा है—तुम फौरन आ जाओ। यहीं सीधे।

(फोन रखना।)

काली : आपको पूरी बात मैंने बता दी—दिल खोलकर। और पूरा विश्वास है, कि ये फैक्ट, आप अखबार में नहीं देंगे।

नरेश : जी।

काली : गौर कीजिए। मोहनदास का मामला किस तरह से बैकग्राउंड में चला गया, फोरग्राउंड ही कहते हैं न, हाँ, मिस चन्द्रा का बलात्कार केस फोरग्राउंड में आ गया। 'मनी इज पावर। मनी कैन टाक।' रुपया भाषा है। कम्युनिस्ट..... नहीं नहीं... ...क्या कहते हैं.....बड़ा अच्छा अल्फाज है... ओ.....।

नरेश : मनी कम्यूनिकेट्स.....।

काली : वाह-वाह ! कम्यूनीकेटस !

नरेश : अब बताइए, डिस्ट्रिक मजिस्ट्रेट हैं तो क्या हुआ, विकासशील मुल्क की डीमोक्रेसी में कोई कुछ नहीं है, जी हाँ, चक्कर में पड़ गये न, बदनामी ऊपर से।

नरेश : इसका कोई सबूत ?

काली : बलात्कार के अभियोग में अब सबूत की कोई जरूरत नहीं है। जी हाँ, हाथ मिलाइए। इस समय देश में बलात्कार के मामलों की सुनवाई भारतीय दंड संहिता की धारा ९० तथा ३७५ और एक पुराने गवाही कानून के अंतर्गत होती है। ये समस्त कानून की धाराएँ इतनी लचीली हैं कि इसमें अपराधी को बच निकलने के काफी अवसर मिल जाते हैं। इसके आधे से अधिक मामले खारिज हो जाते हैं। कई मामलों में बलात्कार की शिकार महिला अपराधियों के मुंह ढके होने के कारण उनकी शिनाख्त भी नहीं कर पाती और कई बार बलात्कार के बाद महिला

की हत्या भी कर दी जाती है। इस प्रकार के काण्डों में गवाही जुटा पाना एकदम असंभव है। वर्तमान फैसले से सबूत के अभाव में भी केवल महिला के बयानों पर विश्वास करने से बलात्कारियों पर जबरदस्त प्रहार हुआ है। कानून के इस अभूतपूर्व कदम ने असहाय महिलाओं के लिए……। देखिए मेरी भाषा पर कंट्रोल !

नरेश : मनी कम्यूनिकेटस……।

(मिस चन्द्रा का आना।)

काली : यही हैं मिस चन्द्रा। इनसे मिलो, नरेश जी……।

नरेश : अरे, ऐसा लगता है, आप को कहीं देखा है। आप कहाँ की रहने वाली हैं ? आप यहाँ क्या करती हैं ?

(देखते रह जाना।)

चंद्रा : (चुप)

नरेश : बैठिए। बैठिए न। (नहीं बैठना।) कालीप्रसाद जी, अब चलूँगा—इजाजत दीजिए।

काली : इनसे कुछ बातचीत नहीं करेंगे ? मैं जरा एक काम से……। ये जरा देर में खुलती हैं।

(काली का जाना।)

नरेश : आप के सिवा और कौन जान सकता है सच्चाई, मगर क्या सभी नहीं जानते, आपके कंधे पर बन्दूक रखकर जिलाधीश किशोर पर निशाना लगाया जा रहा है !

चंद्रा : मैं कतई नहीं जानती आप कौन हैं ? आपके सवालों से मेरा कोई भी ताल्लुक है। दूसरे के

कंधे पर बन्दूक रखकर निशाना लगाना—यह मुहावरा अब गलत हो चुका है। दूसरे पर बन्दूक चलाकर हत्या करने का अभ्यास करना—अब यह मुहावरा है।

नरेश : आपके बोलने का ढंग ? आपका चेहरा-मोहरा कितना मिलता है……।

चंद्रा : जा रही हूँ।

नरेश : आप……आप……।

चंद्रा : मेरे पास वक्त नहीं है।

नरेश : रुकिए। प्लीज़, आप रीना की बहन तो नहीं हैं, बोलिये। जवाब दीजिए।

चंद्रा : क्या ?

नरेश : तुम……रुको।

□□

दूसरा अंक

दूसरा दृश्य

(बंगले में वही कमरा—अरुना फोन पर बातें कर रही है।)

अरुना : ओह, आप वह फिल्म देख आयीं ? अब तो जिसे देखो वही फिल्मी हीरो हो रहा है……जी हाँ, बिल्कुल……नहीं नहीं, मंगल को छठ का व्रत है मेरा। सारे व्रत-त्यौहार करती हूँ, हाँ हाँ, इनकी जन्मपत्री उसी ज्योतिषी को दिखाई है। हाँ, बहुत परेशान हैं, बिल्कुल……हम से क्या मतलब……।

(भीतर से पिताजी का आना।)

पिताजी : डेढ़ बज गया, वे नहीं आये……।

अरुना : दफ्तर में फोन भी नहीं लगता। आप लंच ले लीजिए।

पिताजी : जब कहा है तो जरूर आयेंगे।

अरुना : तब तक आप 'सूप' पी लीजिए। लगता है आ गये। (देखकर) जी, आ गये।

(किशोर का आना।)

किशोर : पिताजी, मुझे आपकी यह बात—अहंकार एक प्रयोजन है……यह खींचकर कहाँ से कहाँ ले जाता है !

पिताजी : क्या हुआ ?

किशोर : लखनऊ में चौधरी दिलीपसिंह के लड़के गजानन की जो हत्या हुई थी, उसमें मोहनदास के बड़े लड़के विक्रमदास के खिलाफ वारंट है।

पिताजी : देखो, एक नये अनुभव की शुरूआत है तुम्हारे जीवन में—अगर चारों ओर असत् है, तो चारों ओर सत् भी है।

किशोर : असत् और सत् में कोई फर्क है ?

पिताजी : वही फर्क देखने की कोशिश करो। जो कुछ भी आ रहा है, सब नये से नया है—तुम उसे 'रुटीन' मानते हो ?

अरुना : आइए, लंच तैयार है।

(सब का जाना। बाहर कालीप्रसाद और नरेश। काली प्रसाद बेहद आवेश में हैं।)

नरेश : शांत। प्लीज़......शांत।

काली : साले को समझा दो, मेरी नज़र के सामने से हट जाये।

नरेश : अपने-आप भाग जायेगा। अंदर चलिए प्लीज़। इतना गुस्सा आपको......।

काली : आप पढ़े-लिखे लोग हैं न...... इन सालों हरामज़ादों को आप नहीं जानते।

नरेश : मैं बिल्कुल पढ़ा-लिखा नहीं हूँ— सड़क छाप हूँ— माफ़ कीजिए। अरे भाई, जा यहाँ से।

काली : यह कमीना ऐसे नहीं जायेगा। (पिस्तौल से फायर)

बस, राम नाम सत्य, साला।

(नरेश का उधर भागना। भीतर से किशोर, पिताजी का आना। चमन दौड़ा हुआ आता है।)

किशोर : क्या हुआ ?

चमन : सर, मर्डर हो गया !

काली : मैंने मारा कुत्ते के पिल्ले को।

किशोर : यहाँ ? इस अहाते में ?

काली : साले ने मजबूर कर दिया। (जाने लगना।) माफ़ कीजिए मुझे झट लखनऊ पहुँचना है। अपनी हाजिरी वहीं। आप खामखा......।

(काली का जाना। नरेश का आना।)

किशोर : नरेश।

नरेश : मैं कालीप्रसाद जी के साथ ही यहाँ आया था।

किशोर : चमन, फोन लाओ।......कौन था ?

नरेश : मैं नहीं जानता। वह उनके पीछे-पीछे आ रहा था। ये मना कर रहे थे।

(किशोर का फोन करना।)

किशोर : (फोन पर) सिविल सर्जन साहब, आप फौरन आइए......यहाँ मेरे अहाते में ही कोई दुर्घटना हो गयी है......हाँ, देख लीजिए......जी हाँ, जो कानूनी कार्रवाई हो कर लीजिए......। (दूसरा फोन) एस० पी० साहब, बुलाइए उन्हें।......हलो......हूँ, जल्दी आ जाइए, जी हाँ, कुछ ऐसा ही हुआ है। आपको

कैसे पता ? हाँ-हाँ, लखनऊ से किसी ने खबर दी है ? अच्छा देख लीजिए ।

(फोन रखना । फोन चमन के हाथ में है ।)

किशोर : पिताजी, आप उधर कहाँ जा रहे हैं ?

पिताजी : देखने ।

किशोर : नहीं ।

पिताजी : जो हो रहा है उससे आँखें मूंद लूं ?

किशोर : यह आपकी ज़िम्मेदारी नहीं है ।

पिताजी : मुझे अपनी ज़िम्मेदारी खुद तै करनी है ।

(जाना ।)

किशोर : (अन्दर जाते हुए) कालीप्रसाद के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है ?

नरेश : कालीप्रसाद जी कालीप्रसाद हैं, बस । मैं कौन होता हूँ किसी के बारे में कोई ख्याल बनाने वाला ?.....जो इस तरह मारा गया है, वह मैं भी हूँ और तुम भी ।

(पिताजी का आना ।)

पिताजी : कालीप्रसाद जैसा कायर.....डरपोक.....पुलिस ने शिनाख्त किया है, वह काली का ही आदमी था—हिस्ट्रीशीटर ।

किशोर : मुझे डराना चाहा है । मेरे चारों ओर जो कुछ भी हो रहा है, सब के सेन्टर में मैं हूँ ।

नरेश : (अचानक पुकार कर) भाभी जी, तीन कप गर्मागर्म काफी । यहाँ मामला बहुत सीरियस हो रहा है ।

(अरुना का आना ।)

नरेश : नो टाक, भाभी । ओनली काफी ।

अरुना : सब लोग लेंगे ।

नरेश : बिल्कुल लेंगे । भाभी, इनके चेहरे देखिए, कितने सीरियस हैं.....बाबूजी, आपको नहीं कह रहा हूँ—इसे कह रहा हूँ—अपने आप से कह रहा हूँ—पता नहीं क्यों, हम लोग नान-सीरियसली सीरियस लोग हैं । और सीरियसली नान-सीरियस हैं । पिताजी, कोई हँसी-खुशी की कहानी सुनाइए ।

पिताजी : तुम सुनाओ ।

नरेश : मैं तो सीरियस हूँ ।

(पिताजी की हंसी ।)

पिताजी : नहीं, तुम जो हो वही हो ।

नरेश : पिताजी, मेरी यह जो खोपड़ी है न, यह खाली है, मैं बी० ए० फर्स्ट इअर से आगे खिसक ही नहीं सका । मुझे ऐसा लगता है, पिताजी, ये दिन, ये क्षण, कामकाज, सारा संयोग, मात्र खिलौने हैं, इनसे खेल लो, बेटा, क्योंकि साले तुम खुद खेले जा रहे हो.....सॉरी, पिताजी, मेरी ज़बान ज़रा लड़खड़ा जाती है, मैंने कोई किताब नहीं पढ़ी न । ज़िन्दगी साली ऐसी है कि.....सॉरी, पिताजी, काफी ।

(अरुना का काफी लिये आना । नरेश सबको देता है)

नरेश : भाभी, हम फ़िफ़्टी-फ़िफ़्टी.....

अरुना : और है न । (पुकारना ।) चमन ।

नरेश : नो, चमन। फ़िफ़्टी-फ़िफ़्टी में जो मज़ा है·····। (खुद प्लेट में, अरुना को कप में। धीरे-धीरे प्रकाश बुझ कर किशोर के आफिस में प्रकाशित होता है। किशोर फाइलों के साथ। चमन खड़ा है। फोन।)

किशोर : (उठाकर) हूँ·····हाँ·····ठीक है। (फोन रखकर) जाओ भेजो। भीतर कोई नहीं आये—फोन तक नहीं।

(चमन का जाना। मिस चन्द्रा का आना)

किशोर : आप हैं मिस चंद्रा ?

चंद्रा : इसके लिए आज फिर कोई सबूत चाहिए ?

किशोर : (देखते रह जाना।)

चंद्रा : पासपोर्ट के लिए अपना एक फोटो 'एटेस्ट' कराने आई थी, कई दिनों घर दफ्तर के चक्कर लगाने के बाद आपने गुस्से में कहा—क्या सबूत है कि यह आपका फोटो है मैंने कई सबूत दिये। एम० एल० ए० कालीप्रसाद, का पत्र दिया। तब आपने कहा—हो सकता है मिस चंद्रा नाम की कोई और लड़की रही हो, जिससे आपकी सूरत-शक्ल मिलती हो, उसकी जगह आप वही बन रही हों—'ए केस आफ इम्पोस्टर'। (रुक कर) आप अपनी ईमानदारी, उसूल, कानून-कायदे के लिए काफी जाने-माने जाते हैं·····।

किशोर : 'डोण्ट वेस्ट माई टाइम।'

चंद्रा : यह आपका तकिया कलाम है।

किशोर : शायद आपको·····।

चंद्रा : शायद, 'शायद' यही आपकी 'आईडेन्टिटी' है ?

किशोर : मुझे आपसे सिर्फ एक बात पूछनी है।

चंद्रा : मुझे पता है आपके पास समय बिल्कुल नहीं होता। आप सिर्फ एक बात, अपने मतलब से मतलब रखते हैं, वह सिर्फ एक बात क्या पूछनी है, मुझे मालूम है। मैं उसे पूछने नहीं दूँगी। न उसका उत्तर दूँगी। क्या होती है मजबूरी एहसास कराने की कोशिश करूँगी।

किशोर : सुनो·····।

चंद्रा : कुछ सुनने नहीं आयी हूँ। तुम्हारे पास सिर्फ, एक सवाल है : 'मैंने तुम्हारे साथ बलात्कार·····।' कभी सोचा भी है, यह लैंग्वेज, यह स्त्री के शरीर, आत्मसम्मान पर कितनी बड़ी चोट है ? स्त्री स्वयं जब किसी पुरुष पर यह आरोप लगाती है, तब उसकी मजबूरी की कोई सीमा हो सकती है ? उसे पता है, अदालत में न्याय के लिए जाना उसकी 'मिज़री' और 'हारर' के फोकस को घुमा देना है। कभी एहसास किया है, पुरुष की भाषा में स्त्री नहीं बोलती।

किशोर : कौन हो तुम ?

चंद्रा : असली मिस चन्द्रा की हत्या कर नकली मिस चन्द्रा। 'इम्पोस्टर' ! मैं असली मिस चन्द्रा हूँ या नकली, तुम जरूर वही असली किशोर सिन्हा हो, जिसके बपचन का नाम मन्यू था, या उसकी हत्या कर तुम इम्पोस्टर किशोर सिन्हा हो ?

किशोर : मन्यू नाम तुम्हें कैसे पता ?

चंद्रा : तुम मन्यू से कैसे मन्नू हो गये ?

किशोर : तुम रीना की बहन तो नहीं ?

चंद्रा : पासपोर्ट में फोटो एस्टेट कराने के लिए तब यह नाम लिया था, तब तुम बहरे थे ।

किशोर : तुम ···रीना ···।

चंद्रा : पासपोर्ट बन गया । इंग्लैण्ड भी हो आयी । लेकिन तुम्हारी बदतमीज़ी माफ़ नहीं कर सकी । रीना ने माफ़ किया । मैं माफ़ करने वाली नहीं —जो भी कीमत देनी पड़े । हाँ, अब करो सवाल ।

किशोर : (मौन ।)

चंद्रा : मैन आफ़ कैरेक्टर, आनेस्टी·····जस्टिस । ये महज़ अल्फाज़ हैं—किताबी, रटे-रटाये ।

(जाने लगना ।)

किशोर : रुको ।

चंद्रा : कहिए ।

किशोर : तुमने यह क्यों किया ?

चंद्रा : तुमने वह क्यों किया ?

किशोर : होश में रहो ।

चंद्रा : वह तुम्हारी ड्यूटी है ।

किशोर : सुनो ।·····मेरी ओर देखो । गलती किससे नहीं हो जाती ? इतनी ज़िम्मेदारियाँ, दौड़-धूप तरह-तरह की चिन्तायें । ज़िन्दगी की सारी बनावट

ऐसी है कि कहीं सुख नहीं है—जन्म, बचपना, पाना, छिपना, पढ़ाई-लिखाई, नौकरी-बीमारी, कोई अंत है ? लड़ाई का अंत भी यदि वही दुख है तो भूलना ही·····।

चंद्रा : इस बकवास का मेरे ऊपर कोई असर नहीं ।

किशोर : तुम्हारी बकवास का मेरे ऊपर पूरा असर हुआ है ।

चंद्रा : उस जलालत के अलावा मेरे पास और कोई ताकत नहीं·····।

किशोर : मुझे और चाहे जो सज़ा दे सकती हो ।

चंद्रा : इतने ताकतवर होकर·····।

किशोर : 'यस-मैन' कभी ताकतवर नहीं होता । मैं उसी दिन से·····माँ की मृत्यु के बाद, उस दिन जब पिताजी ने कहा—'लोग मुझे क्या कहेंगे, बिना माँ के बर्बाद हो गया'·····तब से सब कुछ 'ना' से 'हाँ' में बदल गया । बैड सन से गुड सन हो गया·····नो मैन से 'यस मैन'·····।

चंद्रा : बातूनी ज़लील !

किशोर : तुम चीख सकती हो । चिंघाड़ मार कर रो सकती हो । मेरी चीख मर चुकी है । मैं रो नहीं सकता । 'हाँ' मैं जो कुछ है वही हूँ मैं । मेरे दो बच्चे हैं—उन्हें मैं अपने साथ नहीं रख सका—होस्टल में रहकर·····।

चंद्रा : सच कह रहे हो ?

किशोर : (चुप)

चंद्रा : तुम सच नहीं बोल सकते ।
(विराम ।)

किशोर : वह कहाँ है ? कैसे हैं वो ?

चंद्रा : उसका नाम नहीं ले सकते ? उसका नाम……।

किशोर : नहीं ।……वह नाम नहीं, चिराग है । उसे ज़बान पर मत लाओ । चिराग को घर से बाहर निकालोगी तो इस तेज़ हवा में बुझ जायेगा……बुझेगा नहीं तो कम से कम डाँवाँडोल हो जायेगा ।

चंद्रा : काफी एक्टिंग कर लेते हैं ।
(विराम ।)

किशोर : तुम सच बोल लेती हो, बताओ इसके पीछे काली प्रसाद, मोहन दास……।

चंद्रा : इसमें किसका हाथ नहीं है ?
(बन्द दरवाजे पर दस्तक । कालीप्रसाद और चमन के बीच बोलचाल ।)

किशोर : कौन ? कौन है ?
(कालीप्रसाद का आना ।)

काली : नमस्ते, सर ।

किशोर : आप अभी……?

काली : क्या कहना चाहते हैं—अभी गिरफ़्तार नहीं हुआ ? या अभी लखनऊ नहीं गया ? आप से मैं कभी झूठ नहीं बोलूँगा, सरकार । क्योंकि मेरी ही तरह आप भी दुःखी हैं । बल्कि यूँ कहिए हम दोनों साइकिल के दो पहिये हैं—आप बूरोक्रेसी, मैं डोमोक्रेसी……। सरकार, आप ज़रा उधर चले

जाइए । वैसे न भी जाइए तो……। आप सज्जन लोग हैं, अच्छा नहीं लगता ।
(किशोर का जाना ।)

काली : और क्या हाल-चाल है, चंद्रा ? सब ठीक-ठाक न ? साहब तो भले आदमी हैं, क्या सही है न ? बैठो……बैठो न । लगता है, तब से खड़ी हो । वैसे खड़ा रहना तंदुरुस्ती के लिए……सुनो……।

चंद्रा : कहिए ।

काली : ऐसे बोलोगी, तो क्या बोलूँगा ।

चंद्रा : बोलिए ।

काली : कहीं बाहर चलें ?

चंद्रा : यही कहना था ?

काली : अरे तुम्हारा तो, मैं मार्क कर रहा हूँ, सारा रंग-ढंग ही बदला हुआ है । कोई खास बात?……कुछ नहीं न, वही तो, ऐसे सज्जन साहब के साथ कुछ हो ही क्या सकता है । (रुक कर) खास बात यह है कि वह तेइस जून वाली बात में कोई दम नहीं है ।

चंद्रा : क्या ?

काली : भला, ये कागज़ के आदमी क्या 'रेप'—बलात्कार कर सकते हैं । उससे तो 'प्राइमाफ़ेसी केस, ही नहीं बनता, माई डियर ! और सही वाकया यह है कि तुम तेइस जून को यहाँ इस शहर में क्या, इस डिस्ट्रिक में ही नहीं थीं । तुम पन्द्रह जून से तीस जून तक शिमला में थीं ।

चंद्रा : मैं ? शिमला में ?

काली : बिक्रम के साथ।

चंद्रा : यह कौन है ?

काली : मोहनदास जी के सुपुत्र विक्रम कुमार दास—वी० के० दास।

(इस बीच किशोर आकर वहां उपस्थित हैं। चन्द्रा ने अपने-आप को कुर्सी के सहारे संभाल लिया है।)

काली : हिम्मत नहीं हारते। क्या आँखें बंद कर बैठ गयीं ? अरे जेलखानों में महिला कैदियों की हालत नहीं देखी है—सदके जावाँ (बलिहारी जाऊँ)······

किशोर : कालीप्रसाद जी।

काली : सरकार, माफ कीजिए······।

चंद्रा : देख लिया न ? वहाँ से यहाँ तक······।

काली : साहब का वक्त बरबाद मत करो।

चंद्रा : मैं कौन हूँ ? पहचाना नहीं ?

काली : अरे, उठो भी।

चंद्रा : (आक्रमण) जानवर।

(कुर्सी को हवा में रोक लेना।)

काली : इतना वजन मैं नहीं उठा सकता। खामखा लोग 'इमोशनल' हो जाते हैं।

(प्रकाश बुझना। संगीत। बंगले का वही कमरा।)

अरुना : बस करो तबियत खराब हो जायेगी। आज पूरे नौ दिन हो गये, तुम बंगले से बाहर नहीं निकले। कोई फोन कॉल रिसीव नहीं किया, किसी से मिलते नहीं, लोग क्या सोच रहे हैं। बाहर क्या

हो रहा है, इतनी सारी डाक आई पड़ी है। फाइलों का अम्बार बढ़ता चला जा रहा है। मुझसे भी नहीं बोलते। यह पी-पी कर······।

किशोर : कोई असर ही नहीं, क्या करूँ।

अरुना : डाक्टर बुलाती हूँ।

किशोर : प्लीज नहीं।

अरुना : तो ऐसे कैसे चलेगा।

किशोर : तुम्हीं कोई रास्ता बताओ।

अरुना : लेकिन तुम्हारा प्राब्लम क्या है ?

किशोर : 'आई एम ए रिसपांसिबिल मैन'······।

अरुना : चन्द्रा का लफड़ा भी खत्म हो गया।

किशोर : देखो, मैं कितना सहता हूँ। मेरी खाल कितनी मोटी हो गयी। बताओ मैं औरों की तरह क्यों नहीं हो सका ? मैं हमेशा अपने खिलाफ़ क्यों ? व्यवस्था का पार्ट हूँ, पर व्यवस्था के खिलाफ़ क्यों हूँ ? खिलाफ़ हूँ, पर लड़ नहीं सकता। जानता हूँ—अकेला कोई नहीं लड़ सकता। मशीन का एक पुर्जा या तो घिस जाता है, या उसे निकालकर उसकी जगह दूसरा फिट कर दिया जाता है।

अरुना : सर्विस में और लोग भी तो हैं ?

किशोर : 'वी कांट डिस्कस। वी स्टेट।'

अरुना : हमारे इतने नौकर-चाकर हैं। आस-पास इतने सारे लोग, वे क्या सोचते होंगे ?

किशोर : वे माने ?

अरुना : वे ।

किशोर : अदर दैन मी ? मैं नहीं, मेरे अलावा और……।

अरुना : प्लीज ।……मुझे और भी काम हैं ।

किशोर : यस……और भी काम……यह नहीं ।

(प्रकाश का बुझना । फिर वहीं प्रकाश में नरेश और रीता नांगलोई ।)

नरेश : रीता जी, आप बहुत फार्मल हैं, वरना आप से एक सवाल……सवाल नहीं, जिज्ञासा ।

रीता : ओह श्योर……पूछिए न ।

नरेश : आप दिल्ली के पास……नांगलोई की……।

रीता : जी नहीं, अब आपसे क्या पर्दा……'यू आर ए गुड मैन' ।

नरेश : थैंक्यू, मैडम, 'मैन' हूँ 'गुड बैड' मानता ही नहीं ।

रीता : अरे, 'गुड-बैड' कुछ है ही नहीं ? वंडरफुल !

नरेश : मेरा सवाल, रीता नांगलोई ……।

रीता : हाँ तो आप से क्या पर्दा । मेरे हसबैण्ड यहाँ ए० डी० एम० हैं । यह पाँडे हैं—आर० एस० पाँडे—राम सहाय पाँडे । अब बताइए भला यह भी कोई नाम हुआ—पाँडे…… पाँड़े …… सिंघाड़े । मैंने शादी के बाद ही फैसला कर लिया—'नथिंग डूइंग,'…… पाँडे से नागलोई……उई……उई……उई । (हंसी ।) देखिये आपसे कई मुलाकातें हुई एंड यू आर सो ओपेन माइंडेड……यू सी, मैं यह नहीं जान सकी—

'हू आर यू' ? मतलब आप क्या करते हैं ?

नरेश : काम करने से होने का ताल्लुक बहुत ही कम है, मैडम ।

रीता : वंडरफुल !

नरेश : देखिए न जैसे आप 'हाउसवाइफ़' हैं—हैं न ? यह तो हुआ आप का काम, मगर आप हैं, एन एक्ट्रेस……।

रीता : ओ, हाऊ स्वीट आफ़ यू !

(अरुना का आना ।)

नरेश : बधाई, भाभी जी ।

रीता : क्या बात है ?

नरेश : आज इनकी 'वेडिंग एनीवर्सरी' है ।

रीता : दैट आई नो……मैं अभी आई । एक्सक्यूज़ मी ।

(तेजी से जाना ।)

अरुना : देखिए न, सात बज गये, अब तक नहीं आये ।

नरेश : कोई मिनिस्टर आये हुए हैं ।

अरुना : सुना है इनका सारा मूड आफ़ है । या तो लड़ पड़ते हैं, या बिल्कुल चुप हो जाते हैं । भाई साहब, पहले इनका स्वभाव कैसा था ?

नरेश : बिल्कुल सरल और सहज ।

अरुना : विद्यार्थी जीवन में ?

नरेश : 'फुल आफ़ लाइफ़ ।' कविता करते थे, गाते थे, नाटक में पार्ट लेते थे ।

अरुना : रिअली ? हाँ, मुझसे कुछ कह तो रहे थे। नौकरी में आदमी बिज़ी बहुत हो जाता है।

नरेश : क्यों ?

अरुना : 'रिसपांसिबिलिटी' आ जाती है।

नरेश : नहीं, नौकरी में आकर लाइफ का पेट्रोल खत्म हो जाता है। लोग ऊपर से पेट्रोल डालकर गाड़ी स्टार्ट करना चाहते हैं।

अरुना : लाइफ़ का पेट्रोल क्या है ?

नरेश : लाइफ़ का पेट्रोल लाइफ़ है।

अरुना : ये आजकल बहुत उदास हैं। लड़ाई के मूड़ में जब तक थे, तब एक अजीब-सा थ्रिल आ गया था, पर जब से मिस चंद्रा का केस खत्म हुआ·····। खैर, वह सब दफ़ा-रफ़ा हो गया, मगर ये तब से न जाने किस तरह टूट-से गये। देखा है, देखा था, मगर किशोर के इस रूप को मैंने पहले कभी नहीं देखा था। ये बात मैं सिर्फ आपसे कर रही हूं·····।

नरेश : ये बात आप किशोर से क्यों नहीं करतीं।

अरुना : वह, और मुझसे बात ! ····· बाबा·····!

नरेश : करके देखिए।

अरुना : देख लिया है।

नरेश : भाभी, यही वह अदृश्य खाई है, जहाँ एक बार गाड़ी गिरी कि निकल नहीं पाती—चाहे कितने 'क्रेन' लगाओ— ब्यूटी पार्लर के, हैल्थ क्लब के— सब वलगैरिटी के अलावा और कुछ नहीं।

(सन्नाटा।)

अरुना : यह मिस चंद्रा कौन है ?

नरेश : आज आपकी 'वेडिंग एनीवर्सरी' है।

अरुना : डोंट वरी, कोई मेहमान नहीं आयेगा। किशोर को कतई पसंद नहीं। आपने मिसेज़ रीता नांगलोई को बताकर·····। भाई साहब, यह बताइए किशोर का 'वीकनेस' क्या है ?

नरेश : आपसे बेहतर और कौन जानता होगा।

अरुना : नो, ही इज़ वेरी स्ट्रांगहेडेड पर्सन।

नरेश : कोई कमजोरी है, तभी तो स्ट्रांगहेडेड हैं। (सहसा) लगता है किशोर आ गया।

अरुना : आपसे मिलते ही किस कदर बदल जाते हैं।

नरेश : ओरिजिनल !

अरुना : मुझे अकसर महसूस होता है, मैं किशोर के किसी दूसरे रूप से मिल रही हूँ।

नरेश : कोई आया है।

अरुना : ओफ़ ! वही मिसेज रीता नांगलोई। पास में ही बंगला है, मगर कार से आई हैं। आइए-आइए, रीता जी।

रीता : हार्टियेस्ट कान्ग्रेचुलेशन्स।

अरुना : धन्यवाद। यह क्या ?

रीता : आपके लिए। अभी मत खोलिए। साहब को भी आ जाने दीजिए।

अरुना : आपको पता था ?

रीता : जी हाँ, यस ।

अरुना : कैसे ? हमें यहाँ आये अभी एक साल भी नहीं हुआ ।

रीता : जब मैरेज हुई है, तब मैरेज की एनीवर्सरी तो नेचुरल है ।

(नरेश का हंसना ।)

नरेश : कितना दिलचस्प है ।

रीता : हाऊ नाइस आफ़ यू ।

अरुना : मिस्टर नरेश, उमेश, चैतन्य, दिनेश, इस समय आपको किस नाम से.....?

नरेश : दिनेश चलेगा ।

अरुना : कैसे ?

नरेश : अभी दिनेश की लिखी हुई आर्टिकल देखी है ।

अरुना : देखी है या पढ़ी है ?

नरेश : फुर्सत कहाँ है ।

अरुना : काम कहाँ है, पर फुर्सत नहीं है ।

नरेश : फुर्सत का ताल्लुक यहाँ से (दिमाग छूना) है ।

(किशोर का आना ।)

नरेश : अरे इस कदर चुपचाप आये कि.....। लगता है आज पैदल आ रहे हो ।

रीता : कान्ग्रेचुलेशन्स । बहुत-बहुत बधाई ।

किशोर : किस बात के लिए ?

रीता : ओह गाड ! आपकी शादी की साल्गिरह । जाइए कपड़े बदल कर आइए । कब से हम इंतज़ार कर रहे हैं ।

किशोर : लगता है, कोई प्रेज़ेंट ले आयी हैं । दीजिए..... अच्छा दिखा ही दीजिए ।

रीता : नो, सर, कपड़े बदल कर आइए ।

(जाना किशोर का, पीछे अरुना ।)

रीता : तो मिस्टर आपके कितने सारे नाम हैं ?

नरेश : कई हैं ?

रीता : कितने ?

नरेश : जो काम वो नाम । मसलन देखिए न, इस वक्त मेरा नाम संवादी लाल हो सकता है—हमारा संवाद हो रहा है ।

रीता : व्हाट संवाद ?

नरेश : 'डायलाग' !

रीता : तो 'डायलाग' बोलिए न । आई डोंट लाइक हिन्डी ।

नरेश : पसंद नहीं, या समझतीं नहीं ?

रीता : कोई और बात कीजिए न । आप फिलिम की बात कर रहे थे—एन एक्ट्रेस ! आप मज़ाक तो नहीं कर रहे थे ?

नरेश : मैं कभी मज़ाक नहीं करता ।

रीता : आपने शादी क्यों नहीं की ?

नरेश : कोई और बात कीजिए ।

(हंसना ।)

रीता : यू आर वेरी इंट्रेस्टिंग ।

नरेश : कोई और बात कीजिए ।

रीता : आप कीजिए ।

नरेश : नहीं, आप ।

रीता : पहले आप । मुहावरा बदल गया है ।

नरेश : कोई कहानी ?

रीता : फिल्म की ।

नरेश : आपको फिल्म इतनी पसन्द क्यों है ?

रीता : फिल्म से ऐसा लगता है—रजाई ओढ़कर सो जाना ।

(कुर्ता पायजामा पहने किशोर का आना ।)

रीता : आपके लिए यह 'प्रेजेन्ट' ।

किशोर : ओह कलम—फाउंटेन पैन ·····।

रीता : इम्पोर्टेड ।

(अरुना कोई कागज लिये आती है । दिखाना । नरेश से एकान्त में कुछ कहना ।)

किशोर : यह कागज कहाँ से मिला ?

अरुना : भीतर के पाकेट में ।

किशोर : तुम हर जगह टटोलती रहती हो ।

अरुना : थैंक्यू, मिसेज नांगलोई, हमें कहीं जाना है ।

(रीता को विदा करना ।)

नरेश : (पढ़कर) किशोर ने ठीक लिखा है ।

अरुना : नानसेन्स ।

नरेश : ऐसा इन्होंने सोचा है ।

अरुना : सोचना खतरनाक है ।

नरेश : भाभी, इसे इतना भी हक नहीं ?

अरुना : हक ? हक छोड़ देने के बाद हक बनता है ।

किशोर : मैं नौकरी छोड़ने जा रहा हूँ—यह मेरा फैसला है ।

अरुना : तुम ?

किशोर : हाँ, मैं ।

अरुना : तुम अब 'मैं' नहीं हो । तुम रहे होगे तब, जब कुछ नहीं थे । बहुत हो गया, इस्टैब्लिशमेंट का पार्ट होते हुए ऐंटी-इस्टैब्लिशमेंट का ड्रामा करना । ट्रांसफर·····हर साल ट्रांसफर·····मेरी हड्डी टूट गयीं । मां-बाप होकर भी बिना अपने बच्चों के । मेहनती, ईमानदार, चरित्रवान होकर इस तरह की बदनामी । कहीं कोई सुरक्षित नहीं है, न बाहर न भीतर, न यहाँ न वहाँ । कहीं कोई अकेला नहीं लड़ सकता ।

किशोर : 'इम्पोस्टर' ·····धोखेबाज ·····ढोंगी, धोखेबाज । मेरी आदत । मेरी नौकरी । मैं हूँ, तब भी कोई फर्क नहीं, नहीं, तब भी नहीं । सब को मेरी जरूरत है, पर किसी को भी मेरी जरूरत नहीं । मैं अपने, तुम सबके आइने में देख रहा हूँ····· अपना पात्र·····पात्र में अपना चरित्र । चरित्र के

इस दोगलेपन की बीमारी की कोई दवा है क्या ? यह रोग मेरे अस्तित्व में है। इसी में से मेरी पैदाइश है। मैं सब रोगों से मुक्त हो सकता हूँ, अपने आप से रोग-मुक्त होने का……। (नरेश को पकड़ना चाहा है, अरुना को छूना, पर जैसे संभव नहीं है।)……बेतरह पिटा हुआ, अपमानित, डरा, घर के किसी कोने में खड़ा हुआ बच्चा किसी खामोशी के हाथ सुपुर्द कर दिया जाता है। जियो। काम करो, जिम्मेदारी निबाहो। पर कैसे जीना, क्या करना, किसका निर्वाह करना ? (चीखना) मैं 'क्लोनियल' औपनिवेशिक जानवर जन्तु, (खामोशी) कब तक ? बोलो।……चुप क्यों हो ? चुप रहने की ढोंगी भूमिका मेरी है। यह कथा सुनी है ? एक आदमी बारिश से बचने के लिए नदी में कूद पड़ता है।

अरुना : रुको, दवा ले आती हूँ।

(रोक कर)

किशोर : नहीं, यहाँ से चला जाना चाहता हूँ।

अरुना : कहाँ ?

किशोर : शायद कहीं, कोई ऐसी जगह बची हो।

अरुना : बाहर कोई आया है।

(जाती है।)

नरेश : किशोर……

किशोर : लोगों के साथ मेरे सम्बन्ध 'अनरिअल' हैं।

नरेश : किशोर……

किशोर : जिन्दगी में पहली बार किसी ने मुझे इतना विवश, पराजित किया……वही था, तुम भी उसे नहीं पहचान पाये।

नरेश : हम दोनों एक ही पीढ़ी के हैं।

किशोर : नये में कोई अन्तर आयेगा ?

नरेश : तुम बहुत सारे लोगों के बीच में अकेले हो। नयों में सारे लोग अकेले होंगे।

किशोर : क्या होगा ?

नरेश : कुछ होगा जरूर।

(अरुना का फोन लिए आना।)

अरुना : लीजिए, आपका फोन—चीफ़ सेक्रेटरी।

किशोर : जी, नमस्कार, सर। जी हाँ……जो……जी सुनिये तो……जो……जो…… जो हाँ।

अरुना : कान्ग्रेचुलेशन……कमिश्नर हो गए। मैं कहती थी न,……।

(संगीत चला देना।)

किशोर : अरुना। अरुना ! नरेश……नरेश—नरेश……।

(अंधेरे में केवल संगीत। प्रकाश धीरे-धीरे लौटता है—लोगों की हंसी—पार्टी का दृश्य। "माड" चुटकुले, "फोन" मज़ाक।)

एक : पहली बात कहाँ रह जाती है ? बैकग्राउन्ड में चली जाती है। बात तो दूसरी हो चलती है। दूसरे नम्बर का पैसा……दूसरा एकाउन्ट……। दूसरी……

दूसरा : दूसरी बीवी।

तीसरा : बीवी नहीं, "शी"।

(दूसरी ओर)

एक : उस रात आप ही थे टेलीविजन पर। चैतन्य आप ही हैं ?

नरेश : जी हाँ, अलग-अलग लोगों से अलग-अलग नामों से मिलता हूँ।

(तीसरी ओर)

एक : बड़ा मिस्टीरियस आदमी है। कहता है—मैं काम नहीं करता काम कराता हूँ।

दूसरा : मिस्टर किशोर का क्लासफैलो है।

तीसरा : मिस चन्द्रा का "इस्कैंडल" वाह !।

चौथा : क्या चीज़ थी, यार !

अरुना : आप लोग कुछ खा-पी नहीं रहे हैं।

लोग : कान्ग्रेचुलेशन्स, मैडम। बधाई ! मुबारक !

अरुना : थैंक्यू·····धन्यवाद·····शुक्रिया।

(कालीप्रसाद का आना।)

काली : नमस्कार·····नमस्कार·····हालो, रीता जी। आपका स्वास्थ्य ठीक है न ?

रीता : हे ! अपनी मिसेज़ को नहीं लाये ?

काली : हम तो एक मैडम के चरणों के गुलाम हैं। कहिए जी, आप सब राजी खुशी ! हो हो हो·····नरेश ·····सुरेश·····चैतन्य·····वगैरह-वगैरह। आपके

मित्र कहाँ हैं—कमिश्नर साहब ?

अरुना : बस आ रहे हैं।

काली : हम स्वतन्त्र भारत के निवासी हैं। फ्रीडम है हमें।

नरेश : हुजूर, माईबाप, फ्रीडम कहीं नहीं है। फ्रीडम एक 'वैलू' है, सपना है। सिर्फ पावर है पावर। तभी फ्रीडम और 'पावर' में सदा दुश्मनी रही है।

एक : भारतवर्ष को जो आज़ादी मिली है—वह ट्रांसफर आफ पावर है, ट्रांसफर आफ फ्रीडम नहीं ?

नरेश : फ्रीडम का तबादला नहीं होता।

काली : भाई एक गिलास, मेरा गला सूख गया। आप भी क्या आदमी हैं, एक चुटकुला सुनिये·····जिन्दगी की सच्चाई।

एक : लीजिए, गला सींच लीजिए।

काली : (एक घूंट में पीकर) आज से ठीक सोलह साल पहले की बात है। मैं हायर सैकेण्डरी की परीक्षा में तीन बार फेल होने का रिकार्ड कायम कर चुका था। बड़ी बेकारी, न स्कूल में जगह न घर में पनाह। दिन-रात मारा-मारा फिरना। थोड़ा और देना, भाई साहब। (एक सांस में पी लेना।) मंगलवार का दिन था, आज ही की तरह मैं सिनेमा के टिकट ब्लैक में बेचकर घरजा रहा था। देखा अचानक हनुमान मंदिर के पास वाले शराब के ठेके पर लोगों की भीड़ जमा है। मैं भी

तमाशबीन, वहाँ पहुँच गया। देखते-देखते वहाँ बलवा हो गया। पुलिस, लाठी चार्ज, आँसू गैस, फाइरिंग। मैं अपनी जान बचाने के लिए शराब की दुकान में जा छिपा। लोगों के साथ मैं भी गिरफ्तार होकर पुलिस थाने में पहुँच गया। सुबह होते-होते जनता की अपार भीड़ ने थाने को घेर लिया और अपने प्रिय नेता की रिहाई के नारे लगाने लगे। सभी लोग मेरे अदभुद साहस……।

एक : अदभुद नहीं……अद्‌भुत।

काली : अबे भूतनी के……जब मैं बोलता हूँ……तो जबान और जवानी मेरे पीछे-पीछे ! मैं क्या कह रहा था ?

दूसरा : अदभुद।

काली : मेरे अदभुद साहस और पराक्रम…… जनता जनार्दन ने मुझे क्या से क्या बना डाला। जमीन से उठाकर आसमान पर……।

(ज़मीन पर लेटकर सबको प्रणाम।)

नरेश : उठिए…… उठिए, कालीप्रसाद जी।

काली : क्या साहब आ गये ?

नरेश : आ रहे हैं।

काली : सही आदमी को चुप कराने का एक ही उपाय है—उसे तरक्की दे दो।

(थ्री-पीस सूट में किशोर का आना। सबका चुप हो जाना।)

किशोर : लोग चुप क्यों हो गये ? आप लोग बोलते क्यों नहीं ? पिताजी कहाँ हैं ? वह मेरे साथ आ रहे थे। कहाँ रह गये ? पिताजी ! नरेश, यह क्या हो गया ?

नरेश : लोग आपस में बातें कर रहे हैं।

(लोगों का निःशब्द बातें करना।)

किशोर : लोग मुझसे क्यों नहीं बोल रहे हैं ? पिताजी, आइए न। ये लोग ?

नरेश : शायद आपके आने में थोड़ी देर हो गयी।

किशोर : आई एम सॉरी।

नरेश : कालीप्रसाद जी, कुछ बोलिए। साहब आ गये हैं।

किशोर : यह मेरा दोस्त नरेश है……।

नरेश : कुछ न होता तो खुदा होता……

(लोगों के पास जा-जाकर)

किशोर : इनसे मिलिए। यह……।

नरेश : कद्दू हैं, इलाहाबादी ! जौनपुरी मूली !

किशोर : यार, मुझे क्यों नहीं……।

नरेश : बोलने देते। बोलती अब बंद। बंदगोभी होती है न……।

किशोर : नरेश !

नरेश : पिताजी कहाँ हैं, अरुना भाभी ?

किशोर : आप लोग, खाते-पीते ही रहेंगे कि कुछ बोलेंगे ? जी हाँ, देरी हो गयी। फोन आ गया। कुछ

बोलिए। जी हाँ, आप लोग आये, बड़ी मेहरबानी की। बोलिए मैं क्या कर सकता हूँ ?

(दो लोग रिबन पकड़े खड़े होते हैं। रीता प्लेट में कैंची लिए आती है। कालीप्रसाद का इशारा। किशोर का रिबन काटना।)

किशोर : थैंक्यू। थैंक्यू वेरी मच।

(लोगों का बातें करना, हँसना, मजाक, किशोर का लोगों से घिरते जाना। नरेश सबसे अलग।)

नरेश : मुबारक हो, 'सॉरी' से 'थैंक्यू' तक का सफर ! मुबारक·····।

(सबका हँसते-बोलते जाना। अकेले किशोर। भीतर से छड़ी लिये पिताजी का आना।)

पिताजी : मन्यू।

किशोर : मन्यू नहीं, मन्नू।

पिताजी : उदास मत हो, और कमजोर हो जाओगे। इतने निर्बल हो ? मैं जिम्मेदार हूँ। निराशा तुम्हें भीतर से तोड़ती चली जायेगी। यह दुनिया भीतर से बड़ी ठोस है। लो यह छड़ी, मार-मार कर मेरी खाल उधेड़ लो, क्रोध पैदा हो जाए, मुझ से मुक्त होकर चल पड़ो। मारो !

(किशोर छड़ी लेकर पिताजी पर प्रहार करना चाहता है, पर कर नहीं पाता।)

(पर्दा गिरता है।)

अभ्यास और प्रश्न

अभ्यास

१. 'मन्नू' नाटक का कक्षा में अभिनय पाठ कराना।

२. इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक के नेतृत्व में छात्र और छात्राओं को विभिन्न भूमिकाएँ बाँट दी जायें। छात्र उन्हीं भूमिकाओं के अनुसार नाट्य पाठ करें।

३. इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक छात्रों को प्रत्येक चरित्र की विशेषता और उनकी चरित्रगत भूमिका स्पष्ट करें।

४. भूमिका के अनुसार संवाद बोलने और चेहरे पर व्यक्त करने वाली भाव-भंगिमाओं को स्पष्ट करने का प्रशिक्षण दीजिए।

५. इस नाटक का रंगमंच पक्ष क्या है और किस प्रकार का है इसके बारे में विस्तार से बताइये।

६. 'मन्नू' नाटक के अध्यापन के बाद इसे छात्रों द्वारा मंच पर अभिनीत और प्रस्तुत करना उपयोगी है।

प्रश्न

कथावस्तु सम्बन्धी

१. 'मन्नू' नाटक का विषय क्या है ? इसे समझाते हुए विस्तारपूर्वक लिखिये।

२. 'मन्नू' नाटक के विषय को किस तरह नाट्य कथा का रूप दिया गया है इस पर प्रकाश डालिए।

३. 'मन्नू' की नाट्य-कथा निर्मित करने में किस प्रकार की घटनाओं का प्रयोग हुआ है। उसे समझाइए।

४. कथानक, कथावस्तु और कथा में क्या अन्तर है ? 'मन्नू' नाटक के आधार पर बताइये।

५. 'मन्नू' नाटक की कथावस्तु के निर्माण में नायक के चरित्र का कितना योग है इसे बताइये।
६. इस नाटक का उद्देश्य क्या है ? लेखक इसे व्यक्त करने में कहाँ तक सफल हुआ है ?

चरित्र सम्बन्धी

१. 'मन्नू' नाटक के नामकरण पर प्रकाश डालिये।
२. किशोर और मन्नू के बीच क्या कोई चारित्रिक सम्बन्ध है ? यदि है तो स्पष्ट कीजिए।
३. किशोर और नरेश के चरित्रों की तुलना कीजिए।
४. किशोर और नरेश के चरित्र एक-दूसरे के पूरक हैं। इस कथन की समीक्षा कीजिए।
५. अरुणा और रीता के चरित्र की तुलना कीजिए।
६. इस नाटक का नायक कौन है ? नायक के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
७. कालीप्रसाद क्या इस नाटक का खलनायक है ? कारण बताते हुए स्पष्ट कीजिए।
८. पिताजी और किशोर के चरित्र में क्या असमानताएँ हैं ? इस पर प्रकाश डालिए।

शैली सम्बन्धी

१. इस नाटक की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।
२. इस नाटक के संवाद और उसकी भाषा-शैली का मूल्यांकन कीजिए।
३. इस नाटक की रंग-शैली पर विचार कीजिए।
४. 'मन्नू' नाटक में प्रयुक्त मुहावरों और लोकोक्तियों पर प्रकाश डालिए।
५. इस नाटक के अभिनय पक्ष पर अपने विचार लिखिए।
६. नाटक के तत्वों के आधार पर 'मन्नू' नाटक की समीक्षा कीजिए।